ओ३म्
वैदिक सिद्धान्तों पर
सहेलियों की वार्ता
सुरेशचन्द्र वेदालंकार
॥ यजुर्वेद ॥
॥ सामवेद ॥

॥ ओ३म् ॥

वैदिक सिद्धान्तों पर
सहेलियों की वार्ता

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

सत्यार्थप्रकाश का उद्देश्य क्या है ?

सरला की आयु यही लगभग बत्तीस वर्ष की होगी। वह अधिक पढ़ी-लिखी तो नहीं, पर स्वाध्याय और सत्संग के कारण जीवन की अनेक गूढ़ बातों और रहस्यों को समझने लगी है।

श्रावण का महीना है। सरला अपने मैके आई हुई है। उसके दो पुत्र और एक छः वर्षीया बालिका भी है। वे बच्चे भी आए हुए हैं। इन बच्चों के जीवन को देखकर तो यह लगता है कि उन्होंने 'माता' की पवित्र और सुदिव्य संज्ञा को सार्थक बनाया है। पुत्र और पुत्री, दोनों जिस समय भक्ति के गीत, ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना तथा संध्या-हवन के मंत्रों का पाठ करते हैं तो उनके शुद्ध और सुमधुर उच्चारण, प्रेम, मातृभक्ति, शिष्ट व्यवहार और बोलने की मृदु शैली को देख-सुनकर सभी 'धन्य-धन्य' कह उठते हैं।

सरला के मैके आने पर उसके बच्चों की अनुशासनप्रियता, मधुर व्यवहार और शिष्टता देखकर सभी महिलाएँ उसके यहाँ आती रहती हैं। भारती, मनोरमा, मधु, कमलेश, ऊषा माहेश्वरी, जग्गो, शन्नो आदि बचपन की सखियाँ भी उसके पास पहले की तरह आती हैं और वहाँ वैदिक सत्संग चल पड़ता है। वैसे सरला का अपना जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' का एक नमूना है। सरला समय पर सोती और समय पर जागती है। वह प्रातः जागते समय और रात को सोते समय पवित्र वेद-मंत्रों द्वारा प्रभु-स्मरण और आत्म-निरीक्षण करती है। दोनों समय सन्ध्या, अग्निहोत्र (हवन) और वेद का स्वाध्याय उसके नियमित कार्य हैं। अपनी माँ और भाभी के कार्यों में सहयोग देने, सीने-पिरोने, कढ़ाई-

बुनाई आदि के काम से समय निकालकर वह अपनी सखियों के बीच वेद-प्रवचन, प्रभुनाम-स्मरण और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रंथों की चर्चा करती है।

एक दिन रविवार को जब वह सन्ध्या-हवन आदि कर चुकी और स्वाध्याय के लिए सत्यार्थप्रकाश पढ़ने लगी, तभी भारती, कमलेश, मधु, जग्गो, मनोरमा आदि सखियाँ आ गईं और उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' से सम्बन्धित विषयों पर वार्ता शुरू कर दी। सबसे पहले मनोरमा ने पूछा—"बहन जी, इस सत्यार्थप्रकाश के लेखक कौन हैं और यह कब लिखा गया है?"

सरला बहन ने कहा--"सत्यार्थप्रकाश १८७४ ई० में लिखा गया और इसके लेखक महर्षि दयानन्द सरस्वती हैं।"

"इसके लिखने का प्रेरणा-स्रोत क्या था?"

सरला बहन ने बताया—"उन दिनों महर्षि दयानन्द सरस्वती काशी आए हुए थे। प्रतिदिन उनके सुमधुर प्रभावशाली प्रवचन होते थे, जिन्हें सुनने के लिए उच्च सरकारी कर्मचारी, पढ़े-लिखे विद्वान् और सामान्य जनता आती थी। एक दिन मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास ने ऋषि दयानन्द के प्रवचनों से प्रभावित होकर उनकी सेवा में जाकर कहा—'महाराज, आपके उपदेशामृत से वे ही लाभ उठा सकते हैं जो आपके व्याख्यान सुनते हैं। सबको आपका व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं मिलता; या जो सुनते हैं वे भी सब बातें अपने मस्तिष्क में रख नहीं पाते; उन्हें विचार का अवसर नहीं मिलता। इसलिए यदि आप अपने विचारों को ग्रन्थ-रूप में लिख दें तो जनता का बड़ा उपकार हो।' ग्रन्थ के छपने का भार राजा जयकृष्णदास ने अपने ऊपर ले लिया।"

भारती ने सत्यार्थप्रकाश को अपने हाथ में लेकर उलटा-पलटा और कहा—"इतने हत्काय तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को बनाने और लिखने में तो बहुत समय लगा होगा?"

सरला बहन मुस्काई और उन्होंने बताया—"भारती! तुम्हें आश्चर्य होगा कि महर्षि दयानन्द ने इस ग्रन्थ को कुल साढ़े तीन महीनों में ही पूरा कर दिया।"

जग्गो ने आश्चर्य के साथ कहा—"कुल साढ़े तीन महीने में?"

"हाँ, साढ़े तीन महीने में।" सरला बहन ने कहा--"और यह ऐसा ग्रन्थ है कि इसे पढ़कर गुरुदत्त विद्यार्थी ने कहा—मैंने यह ग्रन्थ चौदह बार पढ़ा है और हर बार के अध्ययन से मुझे नया रत्न हाथ आया है।"

कमलेश ने पूछा—"दीदी! यह गुरुदत्त विद्यार्थी कौन हैं?"

सरला बहन ने कहा—"कमलेश! गुरुदत्त विद्यार्थी के विषय में किसी और दिन चर्चा करेंगे, आज तो बस इतना समझ लो कि गुरुदत्त विद्यार्थी एक बहुत ही विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। पहले वे ईश्वर को नहीं मानते थे अर्थात् नास्तिक थे। महर्षि दयानन्द को जब जहर दिया गया तो गुरुदत्त जी भी उनके दर्शन को गए। जानलेवा कष्ट होने पर भी महर्षि के चेहरे पर अपूर्व तेज और कान्ति देखकर गुरुदत्त जी मुग्ध रह गए। महर्षि के प्रभुविश्वास की ऐसी झाँकी देखी कि वे आस्तिक बन गए।"

सारी सखियाँ आश्चर्य की मुद्रा में थीं। भारती ने तो स्पष्ट कह दिया—"साढ़े तीन महीने में ऐसा ग्रन्थ लिखना संभव नहीं लगता, बहन जी!"

कमलेश, मधु आदि ने भी उसकी बात का समर्थन किया।

सरला बहन ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—"बहनो ! सत्यार्थप्रकाश साढ़े तीन महीने में ही स्वामी दयानन्द जी ने पूरा कर दिया था, और इस ग्रन्थ का जिन्होंने अध्ययन किया है उन्होंने पाया है कि इसमें ३७७ ग्रन्थों का हवाला है। इस ग्रन्थ में १५४२ वेद-मंत्रों या श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। चारों वेद, सब ब्राह्मण-ग्रन्थ, सब उपनिषद्, छहों दर्शन, अठारह स्मृतियाँ, सब पुराण, सूत्र-ग्रन्थ, ग्रह्यसूत्र, जैन और बौद्धग्रन्थ, बाइबिल, कुरान, सबके उद्धरण ही नहीं, उनके रेफरेन्स भी दिये गये हैं, अर्थात् किस ग्रन्थ में कौन-सा मंत्र या श्लोक या वाक्य कहाँ है, उसकी संख्या क्या है, यह सब-कुछ इस साढ़े तीन महीनों में लिखे ग्रन्थ में मिलता है।"

जग्गो संस्कृत में रिसर्च कर रही थी और उसके रिसर्च का चौथा वर्ष था। वह बोली, "बहन जी, मैं तो संस्कृत के पुस्तकालय में बैठकर ४-५ वर्ष से रिसर्च कर रही हूँ। आज का कोई भी रिसर्च-स्कॉलर अगर किसी विश्वविद्यालय की अप-टु-डेट लायब्रेरी में, जहाँ सब ग्रन्थ उपलब्ध हों, इतने रेफरेन्स वाला कोई ग्रन्थ लिखना चाहे, तो भी उसे सालों लग जाएँ, जिसे ऋषि दयानन्द ने केवल साढ़े तीन मास में पूरा कर दिया—यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है ?"

जग्गो की बात सुनकर सरला बहन ने बताया—"स्वामी दयानन्द जी सचमुच दिव्यात्मा थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। भारत में प्रचलित सभी मत-मतान्तरों का उन्होंने गहराई से मनन और मन्थन किया था। वे सत्य के पारखी थे और सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने सत्य पर पड़े हुए परदे ही हटाए हैं। बहन जी, सत्यार्थप्रकाश उनके मौलिक विचारों का ग्रन्थन है। यह ऐसा ग्रन्थ है जिसने समाज को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिला दिया। जिन ग्रन्थों ने संसार को झकझोरा है, उनके निर्माण में प्रायः सालों लगे हैं। भारती ! तुम तो जानती ही हो, इस संसार में साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का जनक कौन है ?"

भारती झट से बोली—"जर्मनी का कार्ल मार्क्स।"

सरला बहन ने पूछा—"उसने कौन-सा ग्रन्थ लिखा है ?"

भारती ने कहा—"कैपिटल।"

सरला बहन ने बताया—"कार्ल मार्क्स को अपना ग्रन्थ लिखने के लिए ३४ वर्ष इंगलैण्ड में रहना पड़ा था। इन ३४ वर्षों का परिणाम यह हुआ कि विश्व में नवीन आर्थिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। आज विश्व के दो महान् राष्ट्र, रूस और चीन, साम्यवादी हैं। क्यूबा का विश्वास भी साम्यवाद की ओर है। पोलैण्ड, यूगोस्लाविया आदि में भी यह विचारधारा फैली हुई है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने साढ़े तीन महीने में लिखे हुए सत्यार्थप्रकाश द्वारा न केवल आर्थिक, अपितु सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी दिशाओं में एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया और आज जिन समस्याओं को लेकर हम उलझे रहते हैं, जैसे जातिवाद की समस्या, छुआछूत की समस्या, गरीबी की समस्या, चुनाव की समस्या, नियम तथा व्यवस्था की समस्या, गोरक्षा की समस्या, परिवार-नियोजन या नसबन्दी की समस्या, आचार-विचार की समस्या, नवयुवकों की समस्या, बेकारी तथा

आर्थिक समस्या, इन सभी का हल या समाधान सत्यार्थप्रकाश में मिलेगा। स्त्रियों की शिक्षा, उनका महत्त्व और उनका मातृरूप भी सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट रूप में उल्लिखित है।"

"सत्यार्थप्रकाश में मुख्यतः किन-किन विषयों का वर्णन किया गया है?" कमला ने पूछा।

"सत्यार्थप्रकाश में चौदह समुल्लास हैं। समुल्लास का मतलब है अध्याय। इन अध्यायों में चौदह विषयों की चर्चा है। ११वें समुल्लास में आर्यावर्तीय मतों के पाखण्डों का खण्डन किया गया है, जिनमें पुराणी तथा वाममार्गी आदि मत हैं। १२वें समुल्लास में नास्तिक-मतान्तर्गत चारवाक, बौद्ध, जैन मतों की पोल खोली गई है। उनकी जो वेद-विरुद्ध बातें हैं उनका युक्तियुक्त खंडन किया है। १३वें समुल्लास में ईसाइयों और १४वें समुल्लास में कुरानियों के मत का खंडन किया है। ये चार समुल्लास खंडनात्मक हैं। शेष दस समुल्लासों में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का मण्डन किया है। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या की है। द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा का विषय है। तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन-व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति का उल्लेख किया है। चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार है। पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि लिखी है। षष्ठ समुल्लास में राजधर्म और सप्तम समुल्लास में वेद और ईश्वर का विषय है। अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है। नवम समुल्लास में विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या है, तथा दशवें समुल्लास में आचार-अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषयों की चर्चा की गई है। चौदहवें समुल्लास के अन्त में आर्यों के सनातन, वेद-विहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है।"

"सत्यार्थप्रकाश शब्द का अर्थ और भाव क्या है?" मनोरमा ने पूछा।

"सत्यार्थप्रकाश का अर्थ है जो सत्य है उसको सत्य, और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश है। वह सत्य नहीं कहलाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रतिपादन करे। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना, मानना सत्य कहाता है। महर्षि दयानन्द आप्त पुरुष थे। आप्त पुरुष का यह मुख्य काम है कि अपने उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप स्पष्ट कर दे और जिसे पढ़-सुनकर मनुष्य स्वयं अपना हिताहित समझे, सत्यार्थ का ग्रहण करे और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे। यही सत्यार्थप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है।"

ईश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है

प्रभु-गुण गाऊँ, तर जाऊँ मैं।
प्रभु के मीठे 'ओ३म्' नाम की,
निशिदिन धूनि रमाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्...

पुण्य-पुष्प मंजुल अंजलि ले,
मैं चरणन में आऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्···
भक्तिभाव का अंजन मलकर,
प्रिय के दर्शन पाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्···
गुरुकुल कमल बसे प्रभुबल से,
अलि बन मैं रस खाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्···
ईश-दया से सब सुख विलसे,
शान्ति-सरोवर न्हाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्···

आज साप्ताहिक सत्संग सरला बहन के पड़ोस, मनोरमा के घर हुआ था। उन्होंने सम्मिलित रूप में 'ओ३म्-महिमा' का गीत गाया और संकीर्तन के बाद सत्यार्थप्रकाश की चर्चा हुई।

कमलेश ने सरला बहन से पूछा—"क्या 'ओ३म्' सच्चिदानन्द भगवान् का नाम है? सच्चिदानन्द भगवान् के कितने नाम हैं?"

सरला बहन ने कहा—"ओ३म् सच्चिदानन्द भगवान् का मुख्य नाम है। यह प्रभु का निज नाम है। भगवान् के गुण भी अनन्त हैं और नाम भी अनन्त हैं। वास्तव में नाम चार प्रकार के होते हैं।"

जग्गो ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा—"कौन-कौन-से?"

सरला बहन ने बताया—"प्रथम प्रकार का नाम निज नाम है, जैसे तुम्हारा नाम जग्गो है, इसका कमलेश, इसका भारती, इसका मधु, और यह नीता है। कोई धर्मेन्द्र है, कोई राजेन्द्र है। ये सब निज नाम हैं। इसी प्रकार परमेश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है।"

"यह तो हुआ नाम का पहला प्रकार, और दूसरा क्या है?" मनोरमा ने पूछा।

"दूसरे प्रकार के नाम सम्बन्धों के द्योतक हैं। तुम्हारा पुत्र संजय है, उसके सम्बन्ध से तुम माता, तुम्हारे पति देवेन्द्र के नाम से तुम पत्नी, तुम्हारे पिता सूर्यदेव हैं तो उनके नाम से तुम पुत्री हो। ऐसे नाम सम्बन्धों से बनते हैं। परमेश्वर के भी सम्बन्ध-द्योतक नाम हैं, जैसे बन्धु। भक्तों से प्रेमबद्ध होने से बन्धु, संसार का पालन-पोषण करने से वह पिता, स्व-स्व कर्मों के अनुसार फल-भोगार्थ जन्म देने के कारण उसका नाम जनिता या जनक, मान और प्रेम करनेवाला होने से माता, रक्षक तथा सबका स्वामी होने से पति, सबसे स्नेह करने के कारण मित्र भी कहाता है।"

"और तीसरे प्रकार के नाम?" भारती ने पूछा।

सरला बहन बोली—"तीसरे प्रकार के नाम कर्मों के द्योतक हैं। ऐसे नाम हम मनुष्यों के भी हैं और भगवान् के भी। रसोई पकाने के कारण मालती पाचिका कहलाती है; पढ़ाने के कारण विमला को अध्यापिका कहते हैं; खूब अच्छा गाने के कारण संयोगिता गायिका कही जाती है; सुन्दर लेख लिखने के कारण भारती लेखिका मानी जाती है—ये सब कर्म-द्योतक नाम हैं। सर्वत्र प्रकाश देने के कारण भगवान् को सूर्य, समस्त चराचर जगत् को गति देने के कारण वायु, पराक्रमी होने से उरुक्रम, न्यायकारी होने से अर्यमा,

हिरण्यमय अर्थात् चमकीले पदार्थों को गर्भ में धारण करने से हिरण्यगर्भ आदि कर्मद्योतक नाम हैं। चौथे प्रकार के नाम गुणों से सम्बन्ध रखते हैं।"

मनोरमा ने प्रश्न किया--"बहन जी, सच्चिदानन्द प्रभु के गुणवाचक नाम कौन-से हैं?"

मनोरमा आयु में छोटी और सखी की बेटी थी, अतः सरला बहन ने दुलार से कहा, "बेटी! वह प्रभु आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक होने से **खम्** है, अविनाशी होने से **अक्षर,** सबका प्रेरक और स्वामी होने से **ईश्वर,** सब आत्माओं में श्रेष्ठ होने से **परमात्मा** समस्त विश्व का संचालक और प्रेरक होने से **विश्वात्मा,** स्वामियों का स्वामी होने से **परमेश्वर,** सबसे बृहत् या महान् होने से **ब्रह्म,** सब वस्तुओं को व्याप्त करने के कारण **विष्णु,** देवों का देव होने से **महादेव,** परमैश्वर्यवान् होने से **इन्द्र,** सदा कल्याणकारी होने से **शिव** और दुष्टों को दण्ड देनेवाला और रुलानेवाला होने से **रुद्र** कहते हैं। ये सब प्रभु के गुणवाचक म हैं।"

"बहन जी, यह बतलाइये कि 'ओ३म्' शब्द का अर्थ और भाव क्या है?" लेश ने पूछा।

"हम जो पवित्र गायत्री मंत्र का जप करती हैं, वह ओ३म् की ही व्याख्या है। वेद भी उसी ओ३म् की विस्तृत व्याख्या हैं। अखिल विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञान, सब सत्य विद्या और पदार्थविद्या से जो जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल 'ओ३म्' है। ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोतम नाम है। अ-उ-म् तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के कई नाम आते हैं, जैसे अकार से विराट् अग्नि, विश्वादि; उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तेजसादि; मकार से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञादि। 'ओ३म्' शब्द संस्कृत के 'अव् रक्षणे' धातु से बना है। रक्षा करने के लिए प्रभु सदा हमारे समीप विद्यमान रहता है। मन-प्राण से समर्पित उपासकों को बचाने के प्रभु के निराले ही ढंग हैं। इसी प्रसंग में एक लोककथा सुनो!

एक राजा अपने मंत्री के साथ पर्यटन तथा शिकार के लिए जंगल में निकल गया। साँझ हो गई, मगर शिकार हाथ नहीं लगा। वे इतनी दूर निकल आए कि रास्ता भटक गये। घना जंगल था। चलते-चलते काँटोंवाली झाड़ी में राजा का वस्त्र उलझ गया। उसने हाथ से वस्त्र बचाने का यत्न किया, तो अँगुली में अच्छा-खासा घाव हो गया। जब खून बहने से न रुका तो मंत्री ने पट्टी बाँधनी शुरू की और कहने लगा—'कोई बात नहीं महाराज! प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।'

राजा को क्रोध आ गया और उसने मंत्री से कहा—'तुम बड़े ही निष्ठुर और कृतघ्न हो। मुझे इतना कष्ट है और तुम कह रहे हो कि प्रभु जो करता है, अच्छा करता है! तुम्हें शर्म नहीं आती? मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं, मेरी आँखों से दूर हो जाओ!" मंत्री ने राजा को 'नमस्ते' कही और यह कहते हुए चल दिया—'ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।'

जला-भुना राजा अकेला ही चल पड़ा। वह ऐसे प्रदेश में जा पहुँचा जहाँ मनुष्य की बलि चढ़ाई जानेवाली थी। वे लोग बलि के लिए किसी उपयुक्त पुरुष की तलाश में थे।

जब उन्होंने एक लम्बे-चौड़े पुरुष को देखा तो सोचा—सुन्दर है, शरीर अच्छा है, बलि के लायक है। राजा को पकड़कर वे लोग मन्दिर ले आए। बलि चढ़ाने से पूर्व जब राजा को स्नान कराया जाने लगा तो पुजारी की दृष्टि राजा की कटी अँगुली पर जा पड़ी। वह चिल्ला पड़ा—'अरे, यह तो अंगभंग है ! इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।'

राजा को छोड़ दिया गया। रास्ते में राजा को मन्त्री की बात याद आ गई कि 'ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।' यदि हाथ पर घाव न होता तो आज उसे बलि का बकरा बनना पड़ता। राजा ने सोचा—ऐसे मन्त्री का तो सत्कार होना चाहिए।

अपने राज्य में लौटकर उसने मन्त्री की खोज में घुड़सवार भेज दिये। जब मन्त्री को खोजकर लाया गया तो राजा ने कहा—'मन्त्रिन् ! मेरे घायल होने और अँगुली कटने पर तुमने कहा था कि ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। तब मैंने अप्रसन्न होकर तुम्हें निकाल दिया था, किन्तु वह मेरी भूल थी। अँगुली कटने के कारण मेरी जान बच गई। परन्तु, मैंने जब तुम्हें दुत्कार दिया था, तब भी तुमने यही कहा कि ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है। यह बताओ कि तुम्हें क्या लाभ हुआ ?'

मन्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—'यह तो और भी अधिक अच्छा हुआ। यदि आप मुझे दुत्कार न देते, तो उस दशा में मैं आपके साथ रहता। आप तो घायल होने के कारण बच गए, किन्तु अंग-भंग न होने से मुझे अवश्य बलि का बकरा बनना पड़ता। मेरे ऊपर तो प्रभु ने विशेष कृपा की—मुझे न तो घायल ही किया और बलि का बकरा बनने से भी बचा लिया।'

सो बहनो, 'ओ३म्' ही सबका रक्षक है। वह परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में लगा रहता है। हमारी दृष्टि छोटी है, प्रभु की आँखें बहुत दूर तक देखती हैं।

तुम्हरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण,
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख नादान ।।

'ओ३म्' सबमें है और सर्वत्र है। 'ओ३म्' सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। 'ओ३म्' सर्वाश्रय और सर्वाधार है। 'ओ३म्' अजर, अमर, सर्वशक्तिमान्, अरूप और निराकार है। 'ओ३म्' हमारे सब कर्मों, विकर्मों और भावों को जानता है, और तदनुसार ही फल देता है। अतः भूलकर भी कोई अशुभ कर्म, विचार और भावना न करो।

'ओ३म्' का स्मरण करती हुई तुम सब निर्भय होकर ग्राम, नगर, वन, पर्वत, सिंधु-सागर कहीं भी विचरो, सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी। विश्वास रक्खो 'ओ३म्' सदा सर्वत्र तुम्हारे साथ है, और तुम्हारा सहायक और रक्षक है। दुःख में 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें शान्ति मिलेगी और तुम्हारा दुःख दूर होगा। सुख में 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें दुःख न होगा। सोते-जागते, चलते-फिरते, लिखते-पढ़ते, खेलते-कूदते, खाते-पीते सदा 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें आनन्द मिलेगा। 'विदेह' जी के शब्दों में—

ओ३म् का ले नाम पंछी !
ओ३म् का कर काम पंछी !!

'स्तुता मया वरदा वेदमाता'

आज बहनों का जमघट कमलेश के घर लगा। कमलेश ने डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु उसका जीवन सादा और ऊँचा था। वह धार्मिक गोष्ठियों में भाग लेती थी तथा नयी बातें जानने की चेष्टा करती थी। सरला बहन भी नियत समय पर कमलेश के घर पहुँची। सबसे पहले सरला बहन ने प्रभु-भक्ति और वेद की महिमा का सामूहिक गान करवाया। उनका गीत भावनापूर्ण था—

हे आनन्द-घन ओ३म् !
सुख की वर्षा करो।
दूर करो शुभ-द्युति से अपनी,
मोह-तिमिर घनघोर। सुख की वर्षा करो
पाप-ताप सब दूर नसाओ,
फेर कृपा दृग-कोर। सुख की वर्षा करो
सुरभित शीतल मन्द पवन हो,
उपवन छवि चितचोर। सुख की वर्षा करो
वेद-सुधा-रस पान करें हम,
प्रमुदित हो मन मोर। सुख की वर्षा करो
व्रतपति व्रत हम ब्रह्मचर्य का
पाल सकें सुकठोर। सुख की वर्षा करो
मातृभूमि सुख-सम्पत्ति साजे,
विनति यही कर जोर। सुख की वर्षा करो

सरला बहन ने सभी स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"महर्षि दयानन्द से पूर्व हिन्दू जाति में यह विश्वास घर कर गया था कि स्त्रियों को और शूद्रों को वेद एवं शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार नहीं है। विचारों में इतनी गिरावट आ गई थी कि पुरुष की अर्द्धांगिनी को विद्याध्ययन के सम्बन्ध में शूद्र के समान माना जाने लगा था। इस भ्रम-मूलक विचार का महर्षि ने खण्डन किया।"

मनोरमा ने पूछा—"क्या स्त्री लोग भी वेद पढ़ें ?"

सरला बहन ने कहा—"अवश्य ! देखो, श्रौत सूत्रादि में कहा है—इमम् मन्त्रं पत्नी पठेत्, अर्थात् यज्ञ में इस मन्त्र को पत्नी पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित वेदमन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत-भाषण कैसे कर सके ? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं। शतपथ-ब्राह्मण में यह स्पष्ट लिखा है। अतः स्त्रियों को भी वेदादि पढ़ना चाहिए।"

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहन जी, एक बात मुझे समझ में नहीं आती, लोग कहते हैं कि वेद द्वारा प्रभु ने अपना ज्ञान और आज्ञाएँ मनुष्य को दी हैं; जब ईश्वर के मुख नहीं, आँख नहीं, कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, तब भला वह मनुष्य को अपनी आज्ञाएँ कैसे देता है ?"

सरला बहन ने कहा—"वेद का अर्थ है ज्ञान। 'वेद' शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है। दयानन्द स्वामी ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में लिखा है कि वेद वह पुस्तक है, जिसमें विश्व की सम्पूर्ण सत्य विद्याओं, या ज्ञान की निधि, स्थापित है। मनुष्य या दूसरे प्राणियों में यह भेद है कि मानव तो ज्ञान के लिए निरन्तर चेष्टा किया करता है, परन्तु दूसरे पशु-पक्षी आदि नहीं। अतः ज्ञान ही मानव की अपनी विशेषता है।"

मनोरमा ने पूछा—"बहन जी, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित, इतिहास, खगोल, भूगोल आदि क्या ज्ञान नहीं ?"

सरला बहन ने कहा—"ये सब ज्ञान की शाखाएँ हैं। ज्ञान तो अनन्त प्रकार का है। ज्ञान चाहे इतिहास का हो या भूगोल का, एकांगी है, क्योंकि उसमें एक ही विषय को लिया गया है। अपनी-अपनी आवश्यकता को देखते हुए हमने ज्ञान की अनन्त शाखाएँ बना ली हैं। परन्तु, मूल रूप में ज्ञान एक ही वस्तु है।"

मनोरमा ने इस विषय को स्पष्ट करने की प्रार्थना की।

"देखो बहन ! धरती न हो तो दुकान नहीं बन सकती, पैसा न हो तो धरती नहीं खरीदी जा सकती, मतलब यह कि भूगोल और अर्थशास्त्र अलग-अलग होने पर भी एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। विद्यालय में भी हिन्दी, इतिहास, भूगोल आदि के लिए वैसे तो अलग-अलग ही पीरियड होते ही हैं, किन्तु इन सबमें योग्यता प्राप्त करने पर ही विद्यार्थी उत्तीर्ण हो पाता है। सब विषयों की सामूहिक जानकारी का नाम ही ज्ञान है और सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का मूलाधार वेद हैं। वेद उस विशाल भवन के सदृश हैं जिनमें उपयोग के सभी पदार्थ विद्यमान हैं और उसके प्रत्येक कमरें के पास उसकी चाभी भी पड़ी हुई है। जिस प्रकार चाभी द्वारा भवन खोलकर व्यक्ति अपने योग्य पदार्थों को ले सकता है, वैसे ही बुद्धिरूपी चाभी से वेदार्थ का ज्ञान कर हम भी सत्यज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज ने वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना है।"

मधु ने पूछा—"वेद कितने हैं ?"

सरला बहन ने बताया—"चार—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये चारों वेद ईश्वरोक्त, सत्यविद्याओं से युक्त हैं और इनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है।"

मनोरमा ने पूछा—"इन वेदों की रचना किसने की है ?"

सरला बहन ने कहा—"मनुजी महाराज का मत है कि सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवताओं ने वेदों को बनाया अर्थात् इनके द्वारा संसार में प्रकट हुए।"

मनोरमा ने पूछा—"आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का क्या मत है ?"

"स्वामी दयानन्द सरस्वती तो अग्नि, सूर्य, वायु और अंगिरा को 'प्राथमिक ऋषि' मानते हैं, जिनके द्वारा सृष्टि के आदि में चारों वेद प्रकट हुए। ये हमारी आर्य-सभ्यता और संस्कृति का मूलाधार हैं, आर्य ज्ञान-विज्ञान का उज्ज्वल धाम हैं। वेद सम्पूर्ण आर्य-वाङ्मय के प्राण हैं। वेद भक्ति-रस की मन्दाकिनी एवं उच्च गम्भीर विचारों का सुखद स्रोत हैं। वेदों में ओज, तेज और वर्चस्व की राशि है। वेद में दिग्-दिगन्त को पावन

करनेवाले उदात्त उपदेश हैं। वेद में मानवता के विद्रोहियों में हड़कम्प मचानेवाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों और अनाचारियों को ध्वस्त-विध्वस्त करनेवाला आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। वेद मानव के समस्त उच्च गुणों की क्रीड़ा-स्थली है। वेद में आधिभौतिक उन्नति की चरम सीमा है, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नयन का चूड़ान्त रूप है।"

मधु ने पूछा—"क्या वेद गीता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है?"

"मधु बहन, गीता यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम दो मन्त्रों की व्याख्या के सिवाय और क्या है?"

भारती ने कहा—"दीदी, एक पुस्तक में वेद की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है, 'वेद ईश्वर की विमल वाणी है और संसार के कल्याण के लिए इसका अवतरण हुआ है। वेद पारिजात से भी अधिक सुगन्धमय और स्फटिक मणि से उज्ज्वल है। वेद के किसी मन्त्र में कुरुक्षेत्र का भैरव रव है, किसी में वीरों की भयंकर हुंकार है, किसी में रण-चण्डी का प्रचण्ड अट्टहास है, किसी में शस्त्रों की झंकार है, कहीं समरभूमि का विकट हास्य है, कहीं वृन्दावन का प्रेम-प्रवाह है, कहीं लक्ष्मी का मधुर चमत्कार है, कहीं ब्रह्मत्व का ललित विलास है। श्रुति भगवती जिसे छू लेती है वह अमृत से अधिक मधुर हो जाता है; जिसे देख लेती है वह चन्द्रिका से अधिक निर्मल हो जाता है, और जिस पर अपने पाद-पद्म रख देती है वह पद्मराग मणि से अधिक मूल्यवान् हो जाता है।' यह कहाँ तक सत्य है?"

"यह परम सत्य है, भारती बहन!"

मनोरमा ने सरला बहन की ओर मुख करके पूछा—"बहन जी, यह बताइये कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जिससे प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है?"

सरला बहन ने उत्तर में कहा—"जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है, वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याण के लिए यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।"

मनोरमा ने पूछा—"परमेश्वर निराकार है या साकार?"

"निराकार।"

मनोरमा का अगला प्रश्न था—"जब परमेश्वर निराकार है, तो वेदविद्या का उपदेश, बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिए।"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद-विद्या का उपदेश करने में उसे कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख-जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न को बोध होने के लिए किया जाता है, कुछ अपने लिए नहीं, क्योंकि मुख-जिह्वा के व्यापार के बिना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अँगुलियों से मूँद देखो, सुनो कि बिना मुख-जिह्वा-तालु आदि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं। वैसे ही परमात्मा ने जीवों को अन्तर्यामी-रूप से उपदेश किया है। केवल दूसरे को समझाने के लिए उच्चारण करने

की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्व-व्यापक है तो अपनी अखिल वेद-विद्या का उपदेश जीवस्थ रूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है। इसलिए निराकार होने से वर्णोच्चारण न होने का दोष नहीं आ सकता है।"

जग्गो ने पूछा—"बहन जी, यह तो बड़ी गहन बात हो गई। आप यह बताइये किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा, इन ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का क्रमशः प्रकाश किया, अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा की आत्मा में प्रकाशित किया। ब्रह्मा ने इस ऋषियों से वेदों का ग्रहण किया।"

भारती चट से बोली—"बहन जी, उन चारों में ही ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया? अन्य में नहीं? इससे तो ईश्वर न्यायकारी न होकर पक्षपाती माना जाना चाहिए ?"

सरला बहन हँस दी—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में वे ही चारों ऋषि अन्य सबसे अधिक पवित्रात्मा थे।"

मनोरमा बोली—"ईश्वर का पक्षपात तो इससे भी सिद्ध होता है, बहन जी, कि उसने किसी देश-भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में किया।"

सरला बहन ने मुस्कराकर कहा—"जो किसी देश-भाषा में करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में करता उसको सुगमता, और विदेशियों को कठिनता होती, वे आसानी से पढ़-लिख न सकते। इसलिए संस्कृत में किया, जो किसी देश की भाषा नहीं, और वेद-भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिए एक-सी और सब शिल्पविद्या का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक-सी होनी चाहिए कि सब देशवालों को पढ़ने-पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता।"

सुधा ने पूछा—"वेद किन ग्रन्थों का नाम है!"

सरला बहन ने कहा—"ऋक्, यजुः, साम और अथर्व-मन्त्रसंहिताओं का; अन्य का नहीं।"

सुधा ने पूछा—"वेदों की कितनी शाखा हैं ?"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"एक हजार एक सौ सत्ताईस।"

मनोरमा ने पूछा—"शाखा किसे कहते हैं ?"

सरला जी ने बताया—"व्याख्यान को शाखा कहते हैं। जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों पर कृपा-दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रम-जाल से छूटकर विद्या-विज्ञान-रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करें।"

मनोरमा ने पूछा—"वेद नित्य हैं या अनित्य ?"

सरला बहन ने कहा—"वेद नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण-कर्म-स्वभाव नित्य, और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।"

मनोरमा ने फिर पूछा—"क्या यह पुस्तक भी नित्य है?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं। क्योंकि पुस्तक तो स्याही और पन्ने से बनी है, वह नित्य कैसे हो सकती है? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे नित्य हैं।"

मनोरमा ने फिर पूछा—"सम्भव है ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया हो और उस ज्ञान से उन ऋषियों ने वेद बना लिये हों?"

सरला बहन ने कहा—"ज्ञान, ज्ञेय के बिना नहीं होता। गायत्री आदि छन्द और उदात्त-अनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक, गायत्री आदि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के बिना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सके। हाँ, वेद पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि-मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिए बनाये हैं। यदि परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। अतः वेद परमेश्वरोक्त हैं। वेद ईश्वर की आज्ञा हैं। ईश्वर की पहली आज्ञा वेद हैं। यह ईश्वर की पहली आवाज है। दूसरी आवाज अन्तरात्मा की आवाज है अर्थात् जब मनुष्य किसी बुरे काम में प्रवृत्त होता है या किसी कठिन काम से घबराता है, तो उसे अनुचित या पाप के कार्य से रोकनेवाली, सन्मार्ग दिखलानेवाली अथवा कठिन काम को भी करनेवाली या प्रेरणा देनेवाली आवाज अन्तरात्मा की आवाज कहलाती है। इसका पालन मानव का धर्म है। महर्षि दयानन्द के जीवन की एक घटना सुनिये—

कठिन तप के पश्चात् घोर अभ्यास के अनन्तर, जब उनके लिए मुक्ति का द्वार खुल गया, तो उन्होंने सोचा कि अब इस शरीर को जीवित रखने का कोई लाभ नहीं। गंगोसरी के निकट एक चोटी पर वे पहुँचे। उन्होंने सोचा कि चोटी से कूदकर शरीर का अन्त कर दूँगा।"

मधु बोली—"चोटी से कूदकर अपने प्राणों को दे देना क्या बड़ा भारी पाप नहीं? सुना है कि आत्महत्या करनेवाले असूर्य नामवाले घने अंधकारमय लोकों में जाते हैं। क्या सिद्धि-प्राप्त महात्माओं को पाप नहीं लगता?"

सरला बहन ने कहा—"बहन, महात्मा, ऋषि, मनुष्य, देवता या असुर, सबको कर्म के अनुसार भोगना पड़ता है। परन्तु ऋषि के मन में जब यह विचार आया, उसी समय अन्दर से अन्तरात्मा की आवाज आई—दयानन्द! यह क्या कर रहे हो? अपने लिए मोक्ष का द्वार खुल गया, इससे तुम्हें शान्ति मिल गई? नीचे इस जलते हुए, अन्धकार और अविद्या में भटकते हुए संसार को देखो! ये अग्नि की लपटें, ज्वालाओं के समुद्र, क्या इन करोड़ों लोगों पर तुम्हें दया नहीं आती? क्या उनके सम्बन्ध में तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं? आगे बढ़ो! इस अग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करो!" सरला बहन बोलती चली गई—"महर्षि के अन्तःकरण में उत्पन्न दूसरी आवाज ने कहा—'मैं एक छोटी-सी बूँद उस विशाल ज्वाला को कैसे बुझा पाऊँगी?' और पहली आवाज ने अधिकार के साथ कहा—'यह अग्नि बुझे या न बुझे, तुम्हारा कर्त्तव्य यह है कि इसे बुझाने का यत्न करो। भले ही

ऐसा करते हुए राख हो जाओ, परन्तु कर्त्तव्य यही है।'···

और महर्षि अकेले ही समराङ्गण में ऐसे उतर पड़े कि विश्व को ज्ञान की दीप्ति से दीप्त कर दिया। उसी दिव्य आलोक के प्रताप से स्वामी श्रद्धानन्द के मन में एक आवाज उठी—'मदिरा गन्दी चीज है ! यह बुद्धि का लोप कर देती है ! मांस खाना स्वास्थ्य और मनुष्य के मन को मलिन करता है ! इसी विचार की प्रतिक्रिया में उन्होंने मांस और मदिरा के बर्तन चकनाचूर कर दिये। अन्तःकरण ने कहा—संसार को आचार-वान् बनाने के लिए गुरुकुल खोलना चाहिए ! इस विचार-स्वप्न को साकार करने के लिए गुरुकुल खोल दिया। सबसे पहले अपने पुत्रों को उस भयावने जंगल में शिक्षित करना प्रारम्भ किया।···

पं० लेखराम ने इसी आवाज की बदौलत मांस खाना छोड़कर हिन्दुओं को मुसल-मान होने से बचाने के लिए चलती गाड़ी से कूदकर, लोहू-लुहान होकर भी बचा लिया।

गुरुदत्त विद्यार्थी नास्तिक से आस्तिक बने। महात्मा गांधी को अपने कर्ममय जीवन में अन्तरात्मा की आवाज ने ही अनेक बार रास्ता दिखलाया है।···

इस प्रकार प्रभु की आज्ञाएँ दो प्रकार से मनुष्य के सामने आती हैं—पहली, जब मनुष्य बुरे काम में लगता है; प्रभु की आवाज या अन्तःकरण की आवाज उसे वैसा करने से रोकती है, प्रेरणा देती है; और दूसरी आवाज वेद की है। आइये, हम वेद का प्रतिदिन स्वाध्याय करें।''

यज्ञ का भाव और महत्त्व

आज वैदिक गोष्ठी का चौथा दिन था। आज का आयोजन जग्गो के घर था। जग्गो तो दुलार का नाम था, वास्तविक नाम यशकुमारी था। जग्गो का जन्म उस दिन हुआ जब उसकी सबसे छोटी बुआ की शादी का दिन था। बरात दरवाजे पर आई हुई थी। उधर द्वाराचार-विषयक यज्ञ हो रहा था और इधर यशकुमारी का जन्म। इसी कारण उसका नाम यशकुमारी रखा गया। सबसे पूर्व सरला बहन ने सामूहिक गान करवाया। गान था--

पूजनीय प्रभो ! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए,
छोड़ देवें छल-कपट को, मानसिक बल दीजिए ॥१
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक-सागर से तरें ॥२॥
अश्वमेधादिक रचाएँ यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को ॥३॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥४॥
भावना मिट जाय मन से पाप-अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की ॥५॥

लाभकारी हवन हों सब जीवधारी के लिए।
वायु-जल सर्वत्र हों शुभ गंध को धारण किए ॥६॥
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥७॥
प्रेम-रस में तृप्त होकर बन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा-रूप ! करुणा आपकी सब पर रहे ॥८॥

आज सखी-वार्ता का चतुर्थ दिवस है और संगीत की समाप्ति पर यज्ञ की सुगन्ध से चतुर्दिक् वातावरण मनमोहक हो गया था। सरला बहन से मनोरमा ने प्रश्न पूछा—"बहनजी ! वैदिक साहित्य में यज्ञ का बड़ा महत्त्व है। यज्ञ से क्या उपकार होता है ? यज्ञ क्यों करना चाहिए ? होम और यज्ञ में क्या अन्तर है ?"

सरला बहन ने बताया—"बहन, वैसे तो यज्ञ और होम में कोई अन्तर नहीं, किन्तु यज्ञ शब्द होम शब्द से अधिक व्यापक है। वेद में यज्ञ के लिए 'अध्वर' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। चारों वेदों में यज्ञ शब्द ११८४ बार आया है—ऋग्वेद में ५८० बार, यजुर्वेद में २४३ बार, सामवेद में ६३ और अथर्ववेद में २९८। बार बेद के कोश 'निघण्टु' में वेन, अध्वर, मेध, विदथ, नार्यः, सवनम्, होत्रा, दृष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः, इन्दुः, प्रजापतिः, धर्मः इत्यादि भी यज्ञ के नाम हैं। इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं। होम भी यही है। इतना तो सब लोग जानते हैं कि वायु और जल दूषित होंगे तो रोग पैदा होंगे और रोग से प्राणियों को दुःख होगा। सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य रहेगा और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।"

मनोरमा ने कहा—"चन्दनादि घिसके किसी के लगाने या घृतादि खाने को देवें तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालकर व्यर्थ नष्ट करना कोई बुद्धिमानों का काम तो है नहीं ?"

सरला बहन ने हँसकर कहा—"मनोरमा बहन ! पदार्थ-विद्या या विज्ञान के अनुसार किसी भी पदार्थ का नाश नहीं होता। पदार्थ केवल अपना रूप बदलता है। उदाहरण के लिए हम कागज जलाते हैं तो कागज का नाश नहीं होता; कागज का कुछ अंश राख बन जाता है, कुछ धुआँ और गैस बनकर उड़ जाता है; परन्तु यदि इन चीजों को इकट्ठा करके तोलें तो मालूम पड़ेगा कि उनका भार कागज के भार के बराबर ही है। इसी प्रकार यज्ञ में डाली हुई सामग्री और घी भी नष्ट नहीं होते। वे सूक्ष्म होकर, फैलकर, वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध से निवृत्ति करते हैं।"

मनोरमा ने फिर प्रश्न किया—"इस महँगाई के जमाने में घी, बादाम, केशर, कस्तूरी आदि को जलाना बुद्धिमानी नहीं है, बहन जी ! जलाने की अपेक्षा केशर, कस्तूरी, सुगन्धित फूल और इत्र आदि को घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखदायक होगा।"

सरला बहन ने बताया—"इन पदार्थों से निकली सुगन्ध में इतना सामर्थ्य नहीं है कि घर में विद्यमान अशुद्ध वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके। यह भेदक शक्ति अग्नि में अवश्य होती है। भेदक शक्ति को समझने के लिए तुम आग में मिर्च डालो, तब पता चलेगा।"

भारती झट से बोल उठी—"छींक आने लगेगी, खाँसी उठेगी। दूर बैठनेवाले भी ऐसा ही करने लगेंगे।"

सरला बहन ने कहा—"यह सब अग्नि का ही प्रताप है, क्योंकि अग्नि में भेदक शक्ति होती है जो घर की दूषित वायु बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सकती है। अग्नि ही का सामर्थ्य है कि दूषित वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल देती है और पवित्र वायु का प्रवेश कराती है।"

भारती बोली—"तो मन्त्र पढ़कर यज्ञ करने का क्या प्रयोजन है ?"

सरला बहन ने कहा—"मन्त्रों में वह व्याख्यान है, जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएँ और मन्त्रों की आवृत्ति अर्थात् दुहराने से कण्ठस्थ रहें। इससे वेद-पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होगी।"

भारती ने पूछा—"क्या होम न करने से हानि भी होती है ?"

सरला बहन ने कहा—"हाँ; जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़कर रोगोत्पत्ति का कारण होने से प्राणियों को दुःख देता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप को दूर करने के लिए उतनी सुगन्ध या उससे अधिक सुगन्ध, वायु और जल में फैलानी चाहिए।"

भारती ने पूछा—"बहनजी ! घी, अन्न तथा बादामादि मेवे खिलाने-पिलाने से क्या लाभ न होगा ?"

सरला बहन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"खाने-पीने या खिलाने-पिलाने से कौन मना करता है ? परन्तु उससे तो केवल खाने-पीनेवाले को ही लाभ होगा। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने पदार्थ के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। इसीलिए होम करना अत्यावश्यक है।"

भारती ने पूछा—"बहनजी ! प्रत्येक व्यक्ति को कितनी आहुति देनी चाहिएँ ? और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है ?"

सरला बहन ने कहा—"प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति देनी चाहिएँ और न्यून-से-न्यून छः-छः माशे की घृतादि की आहुति का परिमाण होना चाहिए। जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।"

भारती ने फिर पूछा—"बहनजी ! मेरे माता-पिता, दोनों यज्ञोपवीत पहनते हैं। पर, प्रायः स्त्रियाँ नहीं पहनतीं। क्या यज्ञोपवीत स्त्रियों को भी पहनना चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"हाँ, दोनों को पहनना चाहिए।"

भारती ने पुनः पूछा—"यज्ञोपवीत पहनने से लाभ क्या है ? इसका उपयोग बताइये।"

सरला बहन ने बताया—"यज्ञोपवीत को प्रतिज्ञा-सूत्र या व्रत-बन्ध कहते हैं। इसको पहनकर मनुष्य कर्त्तव्य करने का व्रत या संकल्प करता है। इसमें तीन धागे इस बात की सूचना देते हैं कि मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण हैं। इन ऋणों को उसे पूरा करना चाहिए।"

भारती ने कहा—"बहनजी, ऋणों की व्याख्या जरा समझा दीजिए।"

सरला बहन ने तीनों धागों के विषय में विस्तार से समझाते हुए कहा—"देव-ऋण, ऋषि-ऋण और अतिथि-ऋण। देव-ऋण चुकाने का तात्पर्य है माता-पिता और आचार्य का श्राद्ध करना और तर्पण करना।"

भारती ने विस्मित होकर कहा—"बहनजी, श्राद्ध और तर्पण तो लोग मृतकों का करते हैं?"

सरला बहन ने हँसकर कहा—"भारती बहन! यह उनकी भूल है। श्राद्ध केवल जीवित प्राणियों से सम्बन्ध रखता है, जिनके प्रति हम श्रद्धा-भाव रखते हैं। तुमने अपने से बड़ों की श्रद्धापूर्वक सेवा की, उन्हें धन और भेंट दी और मन में इच्छा रही कि यह तो कुछ भी नहीं दिया, कुछ भी सेवा नहीं की। इसी को श्राद्ध कहते हैं। तर्पण भी जीवित प्राणियों से ही सम्भव है, जिसमें तृप्त कर देने का प्रयोजन है। मान लो कि तुमने किसी को एक हजार रुपया दिया, सेवा भी की, परन्तु कोसते हुए, यह न तो श्रद्धा हुई और न तर्पण हुआ। श्राद्ध और तर्पण बड़ों का ही होता है और जीवित अवस्था में करना चाहिए। इसी को कहते हैं देव-ऋण चुकाना।"

"और ऋषि-ऋण?"

"ऋषि-ऋण का मतलब है प्राप्त ज्ञान दूसरों को देना। ऋषियों, गुरुजनों और आचार्यों से हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह उनका हमारे ऊपर ऋण होता है। यह ऋण तभी उतरता है जब हम दूसरों को अपना ज्ञान बाँट देते हैं। तीसरा है अतिथि-ऋण, इसका मतलब है अतिथियों की सेवा करना। बहन, अतिथि की सेवा न करने से तो यमराज भी डर गया था और नचिकेता को उसे तीन वर देने पड़े।

यज्ञोपवीत के तीन तागे ज्ञान, कर्म और उपासना,—पृथिवीलोक, द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक,—ईश्वर, जीव और प्रकृति,—भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक के भी सूचक हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को पूर्ण करके 'तुरीय' अवस्था में प्रभु से मेल के संकल्प की सूचना भी ये तागे देते हैं। सत्त्व, रज और तम, तीनों गुणों से लाभ उठाते हुए जीवन के उद्देश्य परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने का संकल्प करना है। इस प्रकार ये तीन तागे संकल्प और प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने का उपदेश देते हैं।"

यज्ञोपवीत के विषय में अनेक प्रश्न और चर्चाएँ हुईं और अन्त में सरला बहन ने हरियाणा के श्री भगतसिंह पटवारी की जनेऊ की घटना सुनाई—एक बार पटवारी भगत जी को आर्यसमाजी मित्र जबरदस्ती यज्ञ में ले गए और उनके गले में जनेऊ डालकर पण्डितजी द्वारा जनेऊ के लाभ पर प्रवचन भी करा दिया। उसके बाद जब वे घर पहुँचे तो उनके जीवन में अद्भुत परिवर्तन आ गया। अब उन्होंने घूस आदि लेना बन्द कर दिया; जो गलत कमाई से धन कमाया, जमीन और मकान बनवाया था वह याद कर-करके लौटा दिया और पवित्र तथा सरल जीवन बिताना शुरू कर दिया। आइये, हम भी यज्ञोपवीत धारण कर जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने का संकल्प लें—

'व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां
इदमहमनृतात् सत्य मुपैमि ॥'

असत्य को त्यागकर सत्य धारण करने के व्रत का यह मन्त्र सरला बहन ने सबसे बुलवाया और गोष्ठी समाप्त कर दी।

स्वास्थ्य-रक्षा

आज की संगोष्ठी बहन मनोरमा ने अपने यहाँ रखवाई। सरला बहन ठीक समय पर पहुँची और उसने बातचीत का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व यह गीत सबके साथ गाया—

दया कर हे दयामय देव ! आओ।
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ ॥
कहाँ मैं नाथ, दोनों हाथ खाली।
कहाँ तुम हो सकल संपत्ति शाली ॥
न आडंबर बड़े मैं कर सकूंगा।
न भारी भेंट लाकर धर सकूंगा ॥
मुझे इसकी न कुछ परवाह ही है।
तुम्हें भगवन् ! न इसकी चाह ही है ॥
हृदय अपना बना आसन बिछाऊँ।
तुम्हें तव प्रेम से उस पर बिठाऊँ ॥
निरन्तर भक्ति के आँसू बहाऊँ।
तुम्हारे पाद-पद्मों को धुलाऊँ ॥
बना श्रद्धा-सुमन का हार लाऊँ।
तुम्हारे कंठ में सादर पिन्हाऊँ ॥
कृपा कर हे कृपा के सिन्धु ! आओ।
सफल मेरे मनोरथ कर दिखाओ ॥
दया कर हे दयामय देव ! आओ !
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ !

इस गीत के बाद कुसुम ने सरला जी से पूछा—"बहन जी ! आज आप हमें 'जीवन की कला' बताइए। जीवन की कला से हमारा मतलब है कि कैसे हम स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें और जीवन में आगे बढ़ें।"

सरला बहन जी की गोष्ठियों में कुसुम बहुत अधिक नहीं आ पाती है। बात यह है कि उसके घर में अत्यन्त वृद्ध और गठिया आदि रोगों से पीड़ित सास-ससुर हैं और दो छोटे बच्चे हैं। पति भी इधर-उधर आने-जाने की ड्यूटी में रहते हैं। उसके प्रश्न को सुनकर मुस्कराते हुए सरला बहन ने उससे पूछा—"कुसुम जी, यह बताइए कि जीवन क्या है ?"

कुसुम ने सोचकर कहा—"जीवन की परिभाषा करना तो बड़ा कठिन है। वैसे जीवन का अनुभव मैं, आप और सभी बहनें एवं अन्य लोग भी करते ही रहते हैं। जहाँ तक

मैं समझती हूं शरीर, आत्मा, मन, बुद्धि आदि का ठीक प्रकार से कार्य करते रहना ही जीवन है।"

सरला बहन बोली—"जीवन की परिभाषा कभी फिर बताऊँगी, अभी तो इतना ही जान लो कि जीवन के लिए पहली और आवश्यक वस्तु है 'स्वास्थ्य'। यही कारण है कि श्री राम की माता कौसल्या, श्री कृष्ण की माता देवकी और शिवाजी की माता जीजाबाई बचपन से ही उनके शारीरिक विकास की ओर ध्यान देती थीं और साथ-ही-साथ उनकी मानसिक और आत्मिक शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न भी करती थीं। एक बलवान् मनुष्य आता है और वह सैकड़ों को झुका देता है। शरीर स्वस्थ न हुआ, बलवान् न हुआ तो न हम उठ सकेंगे और न बैठ सकेंगे। अत्याचार के विरुद्ध लड़-भिड़ भी न सकेंगे, सत्संग और अध्ययन द्वारा ज्ञानार्जन भी न कर सकेंगे। बल नहीं तो कुछ नहीं। इसीलिए कहा गया है **'बलमुपास्स्व'**—बल की उपासना करो। उपनिषद् में कहा गया है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**—यह आत्मा कमजोर व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता। दुर्बलों को दासता और दुःखों में जीवन काटना पड़ता है। यदि शरीर में शक्ति नहीं तो कुछ भी नहीं। शरीर की नींव है उसका बल। इमारत की तरह शरीर की नींव भी गहरी और मजबूत होनी चाहिए। चट्टानों पर खड़ी की गई इमारत वर्षों तक टिकी रहती है, परन्तु बालू पर खड़ी इमारत कब गिर जाएगी, कुछ कह नहीं सकते। जीवन का आधार है स्वस्थ शरीर, इसलिए—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

शरीर ही सब धर्मों और कर्त्तव्य कर्मों का मुख्य साधन है। शरीर की उपेक्षा करना मूर्खता है, पाप है, समाज और ईश्वर के प्रति अपराध है। सन्ध्या के प्रारम्भ में इन्द्रिय-स्पर्श और और मार्जन-मन्त्रों का विनियोग इसी उद्देश्य से किया गया है। बिना मजबूत शरीर के न हम मातृ-ऋण चुका सकेंगे और न आचार्य-ऋण।"

कुसुम ने पूछा—"बहन जी! आपने बल एवं स्वास्थ्य की महिमा का बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया है। अब यह भी बता दीजिए कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए?"

सरला बहन ने बताया—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

उचित भोजन, ठीक प्रकार रहना, उचित निद्रा, उचित कर्म, उचित प्रयत्न, यह सब जो भी करता है, वही योगी है, उसके दुःख नष्ट हो जाते हैं। परन्तु, आजकल उपयुक्त एवं नियमित भोजन की ओर लोग ध्यान ही नहीं देते। इसके परिणामस्वरूप जिसे देखो वही कोई-न-कोई रोग पाले हुए है।"

सरला बहन ने आनन्द स्वामी जी महाराज की 'उपनिषदों का सन्देश' नामक पुस्तक में उद्धृत ऐतरेयोपनिषद् की एक कथा सुनाते हुए कहा—"भगवान् जब सारी सृष्टि बना चुके—पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, फल, फूल सब बन चुके, तब मनुष्य और पशु सब

इकट्ठे होकर भगवान् के पास पहुँचे। मनुष्य ने आगे बढ़कर कहा—'महाराज! आपने बना तो दिया हमें, पर अब हम खायें क्या? और कितनी बार खायें?'

ईश्वर ने कहा—'तुम चौबीस घण्टे में, दिन और रात में, दो बार खाओ।'

मनुष्य ने सुना और पीछे हट गया। पशुओं ने भी सुना तो घबरा गए; आगे बढ़कर बोले—'महाराज! चौबीस घण्टे में केवल दो बार? हम तो भूखे मर जाएँगे।'

भगवान् ने मुस्कराकर कहा—'घबराओ नहीं, चौबीस घण्टे में दो बार खाने का नियम तुम्हारे लिए नहीं, केवल मनुष्यों के लिए है। तुम तो पशु हो, चाहे जितनी बार खाओ, जो भी खाओ। तुम्हारे लिए कोई भी नियम नहीं।'

इस आख्यान का सार यह है कि मनुष्य के लिए शास्त्रों ने दो बार के भोजन का विधान किया है और वह भी नियत समय पर। अन्यथा, जब चाहे और जो सामने आ जाय उसे खाने को ललक उठना मनुष्यता नहीं, पशुता है।"

भारती ने सरला बहन की इस बात की पुष्टि में हँसते हुए कहा—"बहन जी, आज का मानव पशुओं से भी बाजी मारना चाहता है। मनुष्य ने जब देखा कि पशु हर समय खाते हैं तो उसने सोचा कि ये पशु तो हमसे छोटे हैं, बुद्धिहीन हैं और खाएँ अधिक, यह तो ठीक नहीं। हमें भी अधिक खाना चाहिए। तब उसने ईश्वरीय नियम के विरुद्ध खाने-पीने का अपना प्रोग्राम बनाया। अर्ली-टी, बैड-टी, और फिर टी, और पी, और पी, पी टी, पी-पी टी, टी, टी, पी, पी, बस सारा दिन यही होता रहता है। मनुष्य अब मनुष्य नहीं रहा, कुछ और बन गया है। भूल गया है कि खाना स्वाद के लिए नहीं, केवल शरीर-रक्षा के लिए है। भूल गया है कि हमें खाने के लिए नहीं, जीने के लिए खाना है।"

सरला बहन ने बताया—"स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले उपयुक्त भोजन पर ध्यान देना चाहिए। जो अधिक खाता है, वह जल्दी मर जाता है। क्योंकि, परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को भोजन के लिए जीवन-भर का एक राशन कार्ड देता है। कार्ड में जितनी भोजन की मात्रा लिखी है, उतना खाना ही उसे जीवन-भर मिलेगा; इससे न तो कम और न ही अधिक। अब आपके अधिकार में है इस राशन को शीघ्र समाप्त कर दीजिए अथवा देर तक रहने दीजिए। जितनी देर राशन रहेगा, उतनी देर आप जीवित रहेंगे।"

मनोरमा बोली—"बहन जी! आनन्द स्वामी जी महाराज की एक कथा में मैंने भी एक घटना सुनी थी। उनकी सब बातें तो मुझे समझ में नहीं आईं, पर वह जो छोटी-मोटी घटनाएँ और कहानियाँ सुनाते थे, बड़ी अच्छी लगती थीं। स्वामी जी ने बताया था—एक दिन उनका एक भक्त 'मिलाप' कार्यालय में आया। स्वामी जी ने प्रेम से कहा 'सुनाओ भाई दुर्गा! कुछ पानी-वानी पिओगे?' उसने कहा, 'नहीं।' स्वामी जी ने कहा—'लेमनेड?' उसने कहा—'हाँ।' स्वामी जी ने अपने सेवक से लेममेड लाने को कहा। वह एक बोतल ले आया। दुर्गा ने कहा—'इससे मेरा क्या होगा?' स्वामी जी ने उसकी इच्छानुसार दो दर्जन बोतलें मँगवाईं और एक-एक बोतल खोलकर उसे देने को कहा। दुर्गा ने कहा—'महाराज, ऐसा करो कि एक बाल्टी में सब उँडेल दो।' चपरासी ने वैसा ही किया और दुर्गा सारी बाल्टी पी गया। दुर्गा के विषय में स्वामी जी ने कहा कि वह अब नहीं है, छोटी ही आयु में मर गया।"

दुर्गा के 'लेमनेड' पीने की बात सुनके सभी हँस पड़ीं, परन्तु उसकी मृत्यु ने भोजन कम करने की प्रेरणा भी दी।

सरला बहन ने कहा—"बहनो ! चरक ऋषि प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र के निर्माताओं में से एक हैं। उन्होंने जब सब ग्रन्थ लिख लिये और अपने शिष्यों को उन्होंने चिकित्सा की सब विधियाँ बता दीं तथा उन्हें अपने यहाँ से विदा कर दिया, तो उन शिष्यों की परीक्षा के लिए वे एक बार उन चिकित्सकों के बाजार में पहुँचे और पक्षी का रूप धरकर ऊँची आवाज में बोले, 'कोऽरुक् ? कोऽरुक् ? कोऽरुक् ? अर्थात् रोगी कौन नहीं ? रोगी कौन नहीं ? रोगी कौन नहीं ?'

एक शिष्य ने पक्षी को देखकर और उसकी आवाज समझकर कहा—'जो मेरी दूकान का बना च्यवनप्राश प्रतिदिन सेवन करता है, वह रोगी नहीं होता।'

दूसरा बोला—'जो मेरी दूकान की बनी चन्द्रप्रभावटी का सेवन करनेवाला है, वह कभी रोगी नहीं हो सकता।'

तीसरे ने कहा—'जो हमारा बनाया हुआ लवणभास्कर खाता है, वह कभी रोगी नहीं हो सकता।'

चौथा बोला—'मेरे यहाँ का सत्तशिलाजीत खानेवाला कभी बीमार नहीं हो सकता।'

परन्तु चरक को किसी का उत्तर नहीं जँचा। अन्त में जब निराश होकर वे जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि नदी से नहाकर उनके प्रसिद्ध शिष्य वाग्भट्ट आ रहे हैं। चरक फिर एक बार एक वृक्ष पर चढ़कर पहले की भाँति बोले—'कोऽरुक् ? कोऽरुक् ? कोऽरुक् ?' अर्थात् रोगी कौन नहीं, रोगी कौन नहीं, रोगी कौन नहीं ?

वाग्भट्ट ने इधर-उधर देखा, उस वाक्य पर विचार किया और उसका उत्तर दिया—'हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक्।' जो 'हितभुक्' अर्थात् हितकारी भोजन करता है, जैसे दूध, फल, हरी सब्जियाँ, वह कभी अस्वस्थ नहीं हो सकता। जो भोजन शरीर और मन के लिए हितकारी भी हो वह भी 'मितभुक्' अर्थात् नपी-तुली मात्रा में खाना चाहिए। जो मात्रा में भोजन करता है, कभी अस्वस्थ नहीं होता। हम हर समय खाते रहते हैं—प्रातःकाल की चाय, फिर कॉफी, फिर चाय, फिर नाश्ता, फिर भोजन। यह ठीक नहीं; हितकारी भोजन भी मात्रा में ही हो। साथ ही 'ऋतभुक्' हो, अर्थात् ईमानदारी की कमाई का होना चाहिए। पाप के अन्न से आत्मा का पतन होता है। गिरी हुई आत्मावाले मनुष्य का सिर कभी ऊँचा नहीं होता। उसका भोजन पचता नहीं। चिन्ताएँ उसे खाती रहती हैं। इसलिए अपने और अपने बच्चों के जीवन को स्वस्थ और सुखी बनाने के लिए अपने घर में लिखकर टाँग दीजिए—'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्' अर्थात् हितकारी भोजन करो, सीमित मात्रा में भोजन करो, और ईमानदारी की कमाई का भोजन करो। स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिए भोजन के इन नियमों का पालन करना आवश्यक है।"

भारती ने पूछा—"बहन जी ! भोजन के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिए और क्या करें ?"

सरला बहन ने कहा—"स्वास्थ्य के साथ-साथ बल भी पैदा करना आवश्यक है !

उपनिषदों और वेदों में भी बल की महिमा का गान किया गया है। दुर्बल आदमी अपनी रक्षा भी सरलता से नहीं कर सकता तो दूसरों की सहायता कैसे करेगा? शरीर स्वस्थ होगा तो पुरुषार्थ भी होगा। पुरुषार्थ होगा तो संसार के वैभव भी प्राप्त होंगे। तभी तो कहा गया है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी

अर्थात् उद्योगी शेरदिल ही ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। शरीर ही सब धर्मों और कर्मों का मूल साधन है। बिना मजबूत शरीर के मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और आचार्य-ऋण भी नहीं चुकाये जा सकते। इसलिए शरीर को बलवान् और स्वस्थ रखने के लिए 'व्यायाम' की ओर ध्यान देना चाहिए।"

भारती ने लजाते हुए कहा—"हम स्त्रियाँ व्यायाम करती हुई कोई अच्छी लगेंगी?"

सरला बहन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पुरुषों के समान स्त्रियों को भी व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम से तात्पर्य है शारीरिक श्रम। जिन्हें घर-गृहस्थी में निरन्तर कर्म करना पड़ता है, उन्हें अलग से व्यायाम करने की कोई आवश्यकता नहीं; किन्तु जिन्हें आराम और सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें तो व्यायाम करना ही होगा। तभी उनका स्वाभाविक सौन्दर्य निखर सकता है। व्यायाम से ही मनुष्य आत्मरक्षा कर सकता है। स्त्रियों को अपने अनुकूल कुछ खेल-कूद का चुनाव कर लेना चाहिए। खेल भी व्यायाम के ही अंग हैं। खेलों से हमें कई अन्य गुणों को सीखने का भी अवसर मिल जाता है। खेल में बड़े और छोटेपन का भाव दूर हो जाता है, अनुशासन आता है, नियम में रहना पड़ता है, चिन्ताओं और बुराइयों से छुटकारा मिलता है, शरीर के कई प्रकार के रोग निकल जाते हैं। स्त्रियों को चाहिए कि बच्चों को भी खेलों के द्वारा शारीरिक और नैतिक शिक्षा दिया करें।"

खेलों का नाम सुनते ही खिलंडरी जग्गो की बाछें खिल गईं। वह चहककर बोली, "दीदी! क्या लड़कियाँ भी लड़कों की भाँति खेलों में भाग ले सकती हैं?"

सरला बहन ने कहा—"क्यों नहीं! किन्तु लड़के लड़कों के साथ खेलें और लड़कियाँ लड़कियों के साथ। आजकल स्त्रियाँ घरों में बन्द रहती हैं जिससे वे अनेक रोगों से ग्रसित हो जाती हैं। पहले तो चक्की आदि चलाने से उनके शरीर स्वस्थ रहते थे। अब तो आटा पीसना तथा अन्य सभी कार्य मशीन से होने लगे हैं और लड़कियों को उपन्यास पढ़ने और सोने के सिवाय कोई काम नहीं रहा। इसलिए लड़कों के समान लड़कियों को भी खेलना और भी अनिवार्य हो गया है। खेल-कूद और व्यायाम से शरीर में सौष्ठव आता है, शरीर में चपलता आती है, स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर हो जाता है। साधारणतः लड़कियाँ जरा-सी बड़ी हुईं कि उन्हें खेलों से विरत कर दिया जाता है। इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे जीवन के प्रारम्भ से ही अनेक रोगों से पीड़ित हो जाती हैं।"

जग्गो ने फिर पूछा—"दीदी! क्या हम योगासन भी कर सकती हैं?"

"अवश्य कर सकती हैं, परन्तु योगासन का चुनाव सोच-समझकर ही करना

चाहिए।" सरला बहन ने आसनों के विषय में बताते हुए कहा—"शरीर की स्वस्थता के लिए कई तरह के आसनों की खोज की गई है। योगासनों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि थोड़े समय में ही बहुत व्यायाम हो जाता है। आसनों के साथ प्राणायाम भी जुड़ा रहता है।" सरला बहन ने स्वयं बालिकाओं एवं महिलाओं को भुजंगासन, गरुड़ासन, कुक्कुटासन, शीर्षासन, आदि आसन बतलाए और कहा—"पुरुषों की भाँति ये आसन स्त्रियों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी हैं। मेरी राय में व्यायाम भी ऐसा चुनना चाहिए जो शरीर को तो स्वस्थ बना ही दे, साथ ही आमदनी का भी साधन हो।"

मनोरमा ने चकित होकर पूछा—"ऐसा कौन-सा व्यायाम हो सकता है?"

"सब्जियाँ उगाना, फल-फूल उत्पन्न करना ऐसे ही व्यायाम हैं। आपने यदि कालिदास का 'शकुन्तला' नाटक पढ़ा है तो उसमें साफ लिखा है कि कण्व के आश्रम में शकुन्तला, प्रियंवदा और अनुसूया आदि छात्राएँ शिक्षा प्राप्त करते हुए आश्रम में बगीचे की भी देख-भाल करती थीं। शकुन्तला पानी देते-देते थक जाती है और पसीने से तरबतर हो जाती है। इसी प्रकार कपड़े स्वयं धोना, अपना घर स्वयं स्वच्छ करना आदि कार्य भी शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए ऐसे उपयोगी और उत्तम व्यायाम हैं कि 'एक पन्थ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ होती है—घर के काम भी निपट जाते हैं और रूप-रंग भी निखर आता है। व्यायाम से शरीर पुष्ट, फेफड़े मजबूत तथा रक्त शुद्ध होता है। आयु भी दीर्घ होती है।

औषध नहीं व्यायाम समाना,
व्यय नहीं तनिक भी, लाभ महाना।"

मधु ने कहा—"दीदी! जरा यह बताइए कि स्वास्थ्य के लिए हम और क्या-क्या करें?"

सरला बहन ने उन सब लड़कियों को कहा—"मैं एक उपयोगी 'हैल्थ प्रोग्राम' (स्वास्थ्य की योजना) बतला देती हूँ, आप सब उसे नोट कर लें। अपनी घरेलू परिस्थिति के अनुसार इसमें अदल-बदल भी कर सकती हो। यह दिन-भर का चार्ट है—

(१) प्रातःकाल उठना। प्रभु-भक्ति एवं नित्य कर्म करना।

(२) प्रातःकाल ताजा पानी से स्नान करना, व्यायाम करना, खुली हवा में साँस लेना।

(३) स्वच्छ वस्त्र धारण कर संध्या-हवन करना और उसके बाद शान्त मन से दिन-भर के कार्यों का निर्धारण।

(४) जलपान, जिसमें भिगोये हुए चने, सूखे मेवे, दूध, दलिया, दही, मट्ठा आदि ले सकते हैं।

(५) ग्यारह बजे के आसपास अपनी सुविधा के अनुसार भोजन। भोजन में रोटी, चावल, दाल, सब्जी आदि के अतिरिक्त कच्ची तरकारियों का सलाद, गाजर, टमाटर आदि भी लिये जा सकते हैं।

(६) शाम को तीसरे पहर यदि आवश्यकता हो तो कोई ऋतु का फल।

(७) शाम को खेल-कूद, सैर-सपाटा आदि परिस्थितियों के अनुसार शारीरिक श्रम।

(८) रात में रोटी या चावल और एक सब्जी, या भात के साथ दाल ली जा सकती है।

भोजनादि के विषय में बच्चों को निम्नलिखित बातों का अभ्यास कराएँ—

(क) भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। दाँत हमें भगवान् ने भोजन चबाने के लिए ही दिये हैं। यदि दाँत से नहीं चबाओगी तो दाँतों का काम आँतों को करना पड़ेगा और वे कमजोर हो जाएँगी। चबाने के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि दूध को खाइए और रोटी को पीजिए। मतलब यह कि भोजन इतना चबाएँ कि मलाई बन जाए। चबाने से भोजन में रस आता है और वह शीघ्र पचता है।

(ख) दिन और रात में कम-से-कम आठ गिलास पानी पीना चाहिए। पानी का बीच-बीच में आचमन भी करना चाहिए।

(ग) अण्डे, मांस, शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं के सेवन से स्वयं तथा अन्यों को बचाना चाहिए।"

भारती बोली—"दीदी, इन सब बातों के साथ मेरे पिताजी ने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हँसी को आवश्यक बतलाया था; कहा था यह शरीर की नाड़ियों के लिए एक बहुत अच्छा व्यायाम है। उन्होंने बताया कि 'जब मैं गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में कक्षा ९ में पढ़ता था तो उस समय गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में विद्यार्थियों की ड्यूटी अलग-अलग कार्यों के लिए लगती थी। आर्यसमाज के एक वीतराग, हृष्ट-पुष्ट और बहुत ही अधिक साहसी संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज हुए हैं। उनकी वाणी में भी ओज था। वे एक समय भोजन करते थे और बहुत ही प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उत्सव पर वे आए और उनकी सेवा का भार मेरे पिताजी पर पड़ा। एक दिन जब वे दोपहर को भोजन करा चुके और नियमानुसार जब स्वामीजी गंगासागर-भर लस्सी पी चुके तो उन्हें आराम करने के लिए छोड़कर जब वे जाने लगे तो देखते क्या हैं कि स्वामीजी महाराज लगभग पन्द्रह मिनट तक कमरा बन्द करके हँसते रहे। हँसी बिल्कुल स्वाभाविक लगती थी।' मेरे पिताजी आश्चर्य में पड़ गए। वहीं खड़े हो गए। जब हँसी बन्द हुई और दरवाजे खुले तो मेरे पिताजी ने अकेले हँसने के विषय में स्वामीजी से पूछा। उन्होंने मुस्कराते हुए उन्हें बताया—बेटा, यह ऐसा व्यायाम है कि शरीर की सभी नस-नाड़ियाँ पूरी तरह खुल जाती हैं। शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और आत्मा आनन्द से भर जाती है।"

सरला बहन ने इसका समर्थन किया और कहा—"हँसना सचमुच ही एक अच्छा व्यायाम है। यूरोप में तो अनेक व्यक्ति एक 'लाफिंग ग्लास' में अपना चेहरा देखते हैं और हँसते हैं। हमें भी इसका अभ्यास करना चाहिए।"

मनोरमा ने कहा—"दीदी, आपने जो हैल्थ प्रोग्राम बताया है, उसमें आपने भोजन में फल, सब्जियाँ, दूध आदि के उपयोग का तो उपदेश दिया है पर अण्डे और मांस का विरोध किया है, जबकि आज के सभी डॉक्टर और चिकित्सक इनको खाने का निर्देश

देते हैं।" क्या आप किसी भी व्यक्ति को इसका विरोध करते हुए पाएँगी ?"

सरला बहन ने हौले से हँसते हुए कहा— "कोई भी समझदार डॉक्टर अपने रोगी को मांस खाने का निर्देश नहीं दे सकता। रोग कोई भी हो, उससे पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। रोग दूर होते ही उसे ऐसे भोजन की आवश्यकता होती है जो हल्का और सुपाच्य हो, इसीलिए आमतौर पर साबुत मूँग की पतली दाल या घीया, या शलजम की सब्जी से भोजन की शुरूआत की जाती है। जो डॉक्टर मांस या अण्डों का निर्देश करते हैं, वास्तव में वे डॉक्टर होते ही नहीं; वे केवल विदेशों की नकल से तैयार पुस्तकों को रटकर डिग्रीधारी बने होते हैं। सच तो यह है कि मांस खानेवाले जानवरों के दाँत ही अलग तरह के होते हैं, जैसे बिल्ली, शेर, भेड़िया और कुत्ता आदि। मनुष्यों के दाँत गाय-भैंस या बकरी-घोड़े जैसे होते हैं। इस भ्रम को भी मन से निकाल दो कि मांस और अण्डे अधिक शक्ति देते हैं। फलों, अनाजों और शाक-सब्जियों में मांस-अण्डे से कहीं अधिक ऊर्जा और ऊष्मा मिलती है, कहीं अधिक आवश्यक खनिज-लवण होते हैं और सुपाच्य भी।"

मनोरमा बोली— "वैसे मांस खाने में बुराई ही क्या है ?"

"गुण भी क्या है ?" मधु ने कहा।

सरला बहन ने कहा—"मांस विचार और मन को दूषित करता है। मांस-भक्षण से मनुष्य के हृदय से दया के भाव दूर हो जाते हैं और हृदय में निर्दयता अपना स्थान बना लेती है। इससे मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा बौद्धिक शक्तियों का ह्रास होता है। मनुष्य व्यवहार में अशिष्ट और जंगली बनने लगता है। पाइथागोरस, प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, राम, कृष्ण, दयानन्द, गांधी और जार्ज बर्नार्ड शॉ को सारा संसार महान् कहता है और ये सब-के-सब मांसाहारी नहीं थे।

बिहार के राज्यपाल और लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष अनन्तशयनम् आयंगर ने दिल्ली शाकाहारी क्लब का उद्‌घाटन करते हुए मांस-भक्षण के विरोध में कहा था— 'भोजन के लिए हत्या जंगली पशुओं का स्वभाव है।'

जार्ज बर्नार्ड शॉ एक बार एक दावत में गए हुए थे। वहाँ अधिकतर वस्तुएँ मांस से बनी हुई थीं और मांस वे खाते न थे। अतः उन्होंने फल और सब्जियाँ तो ले लीं, किन्तु मांस की प्लेटें परे सरका दीं। दावत देनेवाले मित्र ने आग्रह से पूछा—'ये चीजें आप क्यों नहीं ले रहे हैं ?'

अपनी लट्ठमार शैली में शॉ बोले—'जनाब, मुझे ईश्वर ने भोजन करने को जो पेट दिया है, वह मुर्दे दफनाने का कब्रिस्तान नहीं है।' महापुरुषों के ये कथन स्पष्ट बता रहे हैं कि मांस में गुण होते तो वे भी इन्हें अपनाते।"

मधु बोली—"दीदी ! आपका बताया 'हैल्थ प्रोग्राम' वैसे तो अत्युत्तम है, परन्तु हमारे परिवारों में तो देर से उठना एक फैशन ही बन गया है। आप प्रातः-जागरण के महत्त्व पर भी थोड़ा प्रकाश डाल दीजिए !"

सरला बहन ने बताया—"प्रातः ४-४½ बजे उठना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यदि तुम सुन्दर, सुडौल, स्वस्थ और दीर्घजीवी होना चाहती हो, अपने हृदय को वसन्त की सुगन्धित वायु की तरह आनन्दोल्लास से परिपूर्ण करना चाहती हो, अपनी

धमनियों में स्वच्छ रक्त की लालिमा प्रवाहित करने की अभिलाषा रखती हो, आयु को बढ़ानेवाली पुष्प-सौरभ से परिपूर्ण प्रातःकालीन मन्द पवन का सेवन करना चाहती हो, तो खूब तड़के शय्या-त्याग करने का अभ्यास करो। वेद में लिखा है— सूर्योदय से पूर्व, ऊषादेवी के आने से पहले उठना आवश्यक है। बहनो ! वेद परम पिता का कभी न मरने-वाला और कभी न बूढ़ा होनेवाला काव्य है। ऋग्वेद के १२३वें 'ऊषा सूक्त' के एक मन्त्र में कहा गया है—'देखो, ऊषा का रथ जुड़ गया। अजर और अमर देवता इसमें सवार हो आए हैं। ऊषादेवी देवताओं को साथ लेकर मनुष्य के रोगों को दूर करने के लिए आगे बढ़ रही है !' इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र में बताया गया है कि यह ऊषा देवी प्रभात की पहली ज्योति के साथ किरणों के रथ पर आरूढ़ होकर आगे बढ़ती है तो अपने साथ चार वस्तुएँ लेकर चलती है, उन्हें बाँटती हुई चलती है। परन्तु देती है उन्हें, जो जागते हैं। जो सोते रहते हैं वे चार वस्तुएँ उससे नहीं प्राप्त कर सकते। जिन चार वस्तुओं को वह लुटाती चलती है, बाँटती जाती है, वे हैं बुद्धि, बल, धन और यश।' यदि इन चार वस्तुओं को लेना चाहती हो तो मधु, तुम और सभी बहनें, ऊषा के आने से पूर्व उठो ! ऊषादेवी आएगी और अपने कोष की सम्पत्ति देती चली जाएगी।

हर रात के पिछले पहरे में
इक दौलत लुटती रहती है।
जो जागते हैं वो पाते हैं,
जो सोते हैं वे खोते हैं।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण महाराज की दिनचर्या लिखी गई है। उससे ज्ञात होता है कि वे उस समय उठते थे, जब आकाश में अभी तारे होते थे। उठकर शुद्ध ताजा जल से स्नान करते थे, तब शुद्ध वस्त्र पहनकर संध्या-हवन करते थे। 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरित-मानस' में भी राम और लक्ष्मण के प्रातः-जागरण और सन्ध्योपासना का वर्णन है। इस-लिए हमें जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिए। एक कहावत है कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है।

महर्षि दयानन्द सूर्योदय से दो घण्टा पूर्व उठते थे। नगर से बाहर जाकर दौड़ते थे। एक बार उन्होंने अपने आठ वर्ष के अनुभव की बात सुनाई कि 'इतना सवेरे उठकर घूमते हुए मुझे कोई भारतीय कभी दिखाई नहीं दिया। पहले कुछ अंग्रेज स्त्री-पुरुष दिखाई देते थे, अब वे दिखाई नहीं देते।' सवेरे उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर ताजा हवा में व्यायाम, भ्रमण या दौड़ना स्वास्थ्य के लिए, शरीर के लिए, स्फूर्ति के लिए और जीवन के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है। ताजी हवा में रक्त साफ करनेवाला ऑक्सीजन तो होता ही है, चुम्बकीय तत्त्व भी विद्यमान रहते हैं, जो हमारे अन्तर्मन को अपनी आकर्षण-शक्ति से भरपूर कर देते हैं। हमारा शरीर बिजली की बैटरी के समान है। यदि हम इसे बिना चार्ज किये प्रयोग में लाएँगे तो निश्चित है कि इसकी कार्य-शक्ति समाप्त हो जाएगी। अतः अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के लिए प्रातःकाल उठकर और स्वच्छ वायु में गहरी साँस लेना सीखो।"

कमलेश ने पूछा—"बहन जी, गहरी साँस लेने का क्या उद्देश्य और क्या विधि है?"

सरला बहन ने बताया—"गहरी साँस लेना भी एक कला है। इसका भी अभ्यास करना होगा। इसके आरम्भ के लिए तुम किसी खुली खिड़की के सामने अपनी ठोडी को जरा ऊँचा करके सीधी खड़ी हो जाओ और धीरे-धीरे नाक से वायु को भीतर ले जाओ। फेफड़े के नीचे के हिस्से को भी ऊपर के हिस्से के समान भर लो और वायु को जितना सामर्थ्य और इच्छा हो उतनी देर तक भीतर रखो, फिर धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दो। जबर्दस्ती साँस नहीं रोकनी चाहिए। ऐसा करते हुए अपनी आँखें बन्द कर लेनी चाहिएँ तथा अपने मन में 'ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्' इस मन्त्र का पाठ करते हुए स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा अन्य उत्तम भावों का हृदय में ध्यान करना चाहिए। हमें सोचना चाहिए कि वायु की पवित्र धारा के साथ हममें शक्ति, उत्साह, स्फूर्ति एवं जीवन का प्रवेश हो रहा है। इस प्रकार हमारे रक्त का प्रत्येक कण चुम्बकीय शक्ति से भर उठेगा और इसमें आकर्षण-शक्ति की निरन्तर वृद्धि हो जाएगी।"

कमलेश ने पूछा—"बहन जी, स्नान के लिए गर्म पानी ठीक है या ठण्डा?"

सरला बहन ने कहा—"गर्म पानी से नहाना ठीक नहीं। शरीर को नहाने से पूर्व हथेली से खूब रगड़ लेना चाहिए। हथेली को इस प्रकार रगड़ना चाहिए कि नस-नस में रक्त दौड़ उठे और फिर शीतल ताजा पानी से मल-मलकर स्नान करना चाहिए।

इस प्रकार स्वास्थ्य को उत्तम बनाने और स्वच्छ रखने के लिए व्यायाम, सन्ध्या-वन्दन और उत्तम भोजन करना चाहिए। उत्तम स्वास्थ्य सदाचार का मूल है। अतः बालक-बालिकाओं में स्वास्थ्य-प्रेम जगाना सन्तान-निर्माण-कला एक प्रमुख अंग है। शारीरिक स्वास्थ्य से ही हम आत्मिक स्वास्थ्य या शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अब समय अधिक हो गया है, इसलिए आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के साधनों और लाभों पर अगली किसी गोष्ठी में चर्चा होगी।"

स्वच्छता

आज जब साप्ताहिक गोष्ठी में मधु, कमलेश, ऊषा, भारती, जग्गो, मनोरमा आदि सभी महिलाएँ एकत्र हुईं तो निम्न गीत से सरला बहन ने कार्यवाही प्रारम्भ की—

हे आनन्दघन ओ३म्!
सुख की वर्षा करो।
पाप-ताप सब दूर नसाओ।
फेरि कृपा-दृग-कोर। सुख की···
दूर करो शुभ द्युति से अपनी
मोह-तिमिर घनघोर। सुख की···
शीतल मन्द पवन सुरभित हो,
उपवन छवि चितचोर। सुख की···

गुरुकुल-कमल लसे प्रभु-बल से
प्रमुदित हो मन-मोर। सुख की ···
व्रतपति व्रत हम ब्रह्मचर्य का,
पाल सकें सुकठोर। सुख की···
मातृभूमि सुख-सम्पत्ति साजे,
विनति यही कर जोर॥ सुख की···

सरला बहन ने कहा—"जो प्रभु इतना सुन्दर, इतना पवित्र और इतना आकर्षक है, उसे प्रसन्न और खुश करने के लिए हमें भी स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल बनने की आवश्यकता है। तभी हमारे चारों ओर सुख की वर्षा हो सकती है।"

भारती ने अनुरोध किया—"बहन जी! आज आप स्वच्छता के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।"

सरला बहन बोली—"बहनो! स्वच्छता का महत्त्व ईश्वर-पूजा से कम नहीं और सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता। बस, हमें इतना ध्यान रखने की आवश्यकता है कि हम जहाँ रहते हैं, जहाँ जाते हैं, जहाँ देखते हैं, वहाँ जो वस्तु अच्छी न लगे उसको सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। दूसरों को शुद्ध बनाने से पहले हमें, विशेषकर महिलाओं को, अपना तथा अपने बच्चों का शरीर तथा घर साफ-सुथरा करना होगा।

अद्भिः गात्राणि शुध्यन्ति अर्थात् 'जल से शरीर शुद्ध होता है।' अतः हमें स्वयं, तथा बड़ों को भी प्रतिदिन नहाने की आदत डालनी चाहिए। नहाने के समय शरीर के प्रत्येक अंग को साफ रखने का ध्यान रखना चाहिए। नहाने के साथ-साथ दाँत, नाक, आँख आदि की सफाई भी आवश्यक है। हमारा सिर यदि साफ नहीं होगा तो उसमें 'जूँ' पड़ जाएँगी। एक जूँ की आयु तीन-चार सप्ताह तक की होती है, इस काल में एक जूँ सौ अण्डे दे देती है। इन्हें लीख कहते हैं। इन लीखों को एक से दूसरे सिर तक पहुँचते देर नहीं लगती। जब ये किसी के शरीर में पड़ जाती हैं तो परेशान कर देती हैं। बच्चे और बच्चियाँ खुजा-खुजाकर तंग आ जाते हैं। जिनके सिर में जूँ पड़ गई हैं, उन्हें शाम को साबुन से धोकर 'पैरेफीन आइल' या किसी जूँ-नाशक वस्तु का प्रयोग करना चाहिए। पतली कंघी से उन्हें निकाल भी देना चाहिए। ये कपड़ों में भी आकर बहुत परेशान करती हैं। उन कपड़ों को धोकर उन पर गर्म लोहा चलाकर जुओं से मुक्ति पा लेनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, दाँतों पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। दाँत दो प्रकार के होते हैं— दूध के दाँत और पक्के दाँत। छः-सात मास से दूध के दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। उस समय बच्चों का ध्यान रखना माता का कर्त्तव्य है। ये सात-आठ वर्ष तक रहते हैं। दाँत के ठीक न रहने का कुप्रभाव पाचन-शक्ति पर भी पड़ता है। दाँतों की भाँति आँखों की स्वच्छता भी बड़ी आवश्यक है। प्रायः मुख में जल भरकर, आँखों को खोलकर शीतल जल के छींटे देना, आवश्यकतानुसार आँखों में उत्तम अंजन लगाना भी उपयोगी है। पाचन ठीक न होने से पेट साफ नहीं होता और बालक को कब्ज की शिकायत हो जाती है। पेट की गन्दी-सड़ी हवा का हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। माता को

चाहिए कि बचपन में उसे ठीक समय पर शौच जाने का अभ्यास कराये। पेट ठीक रखने और शौच ठीक समय पर कराने के लिए उसे, जब से वह दूध पीना प्रारम्भ करे, ठीक समय पर नियत मात्रा में भोजन की भी आदत डालनी चाहिए। पेट के कृमि और अन्य रोगों को दूर करने के लिए स्वास्थ्य के नियमों के साथ, योग्य चिकित्सक से भी सहायता लेनी चाहिए। लेकिन बालकों को ओषधि का आदी बना देना और अनावश्यक इंजैक्शनों का प्रयोग करना ठीक नहीं। बच्चों के लिए जो आवश्यक टीके हैं, उन्हें समय पर लगा दें तो बाद में कोई आवश्यकता कम ही रहती है।

स्वच्छता का व्यवस्था से भी बहुत अधिक सम्बन्ध है। घर की स्त्रियों का बहुत अधिक समय चीजों को खोजने में ही चला जाता है। चाभी, दियासलाई, जूता, बर्तन आदि इधर-उधर रखने से बड़ी कठिनाई होती है। पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज ने अपने साथ घटी एक घटना सुनाई थी—

दिल्ली के करौल बाग में एक सज्जन उन्हें रात को दूध पिलाने अपने घर ले गए। घर में जाकर बैठे ही थे कि बिजली फेल हो गई। अन्धकार हो गया। गृहपति महोदय ने पहले बिजली-विभाग को बुरा-भला कहा, और इसी क्रम में उन सज्जन महानुभाव ने सरकार को भी कोसना प्रारम्भ कर दिया। पूज्य स्वामी जी महाराज ने कहा— 'महाशय! राज्य को कोसने से और सरकार को बुरा बताने से तो कुछ बनेगा नहीं, आपके घर में कोई मोमबत्ती आदि होगी ही, उसे जला लीजिए, काम चल जाएगा।' तब गृहपति ने कक्कू की माँ को पुकारा और मोमबत्ती तथा दियासलाई माँगी। अब दियासलाई और मोमबत्ती की खोज शुरू हुई। जब घर में दियासलाई नहीं मिली तो एक सिगरेट पीनेवाले से माँगी। तीलियाँ जला-जलाकर मोमबत्ती की खोज शुरू हुई। नौबत यहाँ तक पहुँची कि तीलियाँ खत्म होने लगीं। दियासलाईवाले ने कहा—'तीलियाँ जरा सँभालकर खर्च कीजिए, नहीं तो वे भी समाप्त हो जाएँगी और आप अधिक कठिनाई में पड़ जाएँगे।' इसी भाग-दौड़ में बिजली आ गई। गृहपति बैठते हुए बड़बड़ाए—'इस राज्य का सारा प्रबन्ध ही खराब है। जिस विभाग को देखो वहीं अव्यवस्था है। कितना समय इन लोगों ने नष्ट किया!'

स्वामी जी महाराज ने आलोचना सुनकर हँसते हुए कहा— 'राज्य का प्रबन्ध अच्छा है या बुरा, परन्तु तुम अपने घर का प्रबन्ध तो देखो! न दीपशलाका रखने का ठिकाना, न मोमबत्ती रखने का स्थान, और कोसा जाता है राज्य को! राज्य क्या तुम्हारे घर का भी प्रबन्ध करेगा?'

यही हाल प्रायः सभी घरों का होता है। हमें इसे सुधारना चाहिए। स्वच्छता के साथ-साथ व्यवस्था भी घर के लिए आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक और यहाँ तक कि आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति में भी इनका बड़ा महत्त्व है।"

भारती ने सरला बहन की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा— "बहन जी, सरकार को कोसने की तो हमारी आदत ही बन गई है। अगर हम स्वच्छता और व्यवस्था की बातें स्वयं अपने स्वभाव ले आएँ तो हमारी सरकार को भी इससे सहयोग मिलेगा। गाड़ी में यात्रा करते हुए हम पढ़ती हैं 'थूको मत!' लेकिन डिब्बे में थूकने से लोग बाज नहीं

आते। दियासलाई और बीड़ियों के टुकड़े भी बाहर न फेंककर अन्दर ही फेंकते हैं। स्त्रियाँ बच्चों को पाखाना तक करवाकर वहीं धो देती हैं।"

मनोरमा झट से बोल उठी—"आप सत्य कहती हैं, सरला बहन! एक बार मैं अपने पिताजी के साथ यात्रा कर रही थी। बस से गोरखपुर से मेहरौना जाना था। उन्होंने रास्ते के लिए अखबार खरीदा और उसे पढ़ना शुरू ही किया था कि एक अपटूडेट सज्जन ने बाहर का पन्ना माँग लिया। दूसरे व्यक्ति क्यों बैठे रहते, उन्होंने दूसरा भी ले लिया। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाता हुआ फटता चला गया, परन्तु इसकी चिन्ता किसी को भी नहीं हुई। एक सीट पर एक स्त्री के बच्चे को पाखाना लगा और उसने वह अखबार लेकर उसी पर करवा दिया और बाहर फेंक दिया। मेरे पिताजी के मुख से निकला कि 'अरे भाई, हमने तो पढ़ा भी नहीं!' यह है हमारी सभ्यता! यह है सफाई, स्वच्छता और अनुशासन! रेलवे की ओर से बड़े-बड़े स्टेशनों पर सफाई के लिए मेहतरों का प्रबन्ध रहता है, लेकिन उन्हें बुलाकर डिब्बा साफ करवाने की आदत हममें नहीं है। मेहतर भी बुलाने से आ ही जाएगा, यह भी निश्चित नहीं। वस्तुतः हमें अपनी आदतें सुधारनी होंगी।"

कमलेश बोली—"ट्रेन और बसों में सिगरेटों के धुएँ का भी एक पेचीदा सवाल है। रेलवे का नियम तो ऐसा है कि दूसरे मुसाफिरों की स्वीकृति के बिना कोई भी डिब्बे में सिगरेट नहीं पी सकता, लेकिन इस नियम को माने कौन? रेलवे के अधिकारी भी इस ओर ध्यान नहीं देते। सच बात तो यह है कि अधिकतर लोग बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तो धुआँ भी उसी की ओर उड़ाते हैं जो उससे बचना चाहता है। लेकिन हम महिलाएँ, जो मुख से धुआँ उड़ाने की आदी नहीं हैं, कैसे उस बदबू को सहन करें?"

सरला बहन बोली—"जब रेलवे का कानून अधिकार दे रहा है तो हमें उस अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। सिगरेट-बीड़ी पीनेवालों को प्यार से समझाया जा सकता है कि वे बन्द कर दें। नियम अथवा कानून तोड़नेवाला अपराधी ही होता है, भले ही वह कितना ही दबंग हो। अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने में हमें भी सहयोग देना चाहिए, परन्तु यह तभी संभव है, जब हम स्वयं नियमों का परिपालन करें।"

कमलेश ने सरला बहन की बात का समर्थन करते हुए कहा—"हमारी नसों में अनुशासन कहाँ? जहाँ बैठे वहीं थूक दिया, वहीं लाकर जूठन डाल दी। किसी पार्क में गए तो फूलों पर धावा बोल दिया। घर में भी और सब चीज़ों की ओर तो हम कभी-कभी सफाई पर ध्यान देती हैं, परन्तु रसोईघर, स्नानघर, पेशाबघर और पाखाने की सफाई की बात सोची ही नहीं जा सकती। रेल-सफर में भी वहीं खाकर हाथ-मुँह धोना, वहीं थूकना, वहीं नाक छिनक देना अपना अधिकार मानते हैं। सड़क पर चलते खाँसी आई तो झट बीच रास्ते में ही थूक दिया। दूकानदार अपनी दूकानें साफ करके कूड़ा सड़क पर फेंक देते हैं। विद्यालयों, कचहरियों, कार्यालयों और सार्वजनिक स्थानों और दीवारों को हम पान की पीक से गन्दा कर देते हैं। घर के बड़े-बूढ़े और बूढ़ियाँ अपने छोटे बच्चों को, जो आँगन में इधर-उधर दौड़-भाग रहे होते हैं, उनकी परवाह किये बिना अपनी चारपाई पर बैठे-बैठे जहाँ चाहे थूकते रहते हैं। एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी की आँख बचाकर दूसरे

के घर के सामने रास्ते पर ही अपने बच्चों को शौच के लिए बिठा देते हैं। अपनी स्वच्छता की ओर तो पूरा ध्यान देते हैं, मगर दूसरों के घरों को कूड़ादान समझ लेते हैं। देखा-देखी दूसरे लोग भी वही तरीका अपना लेते हैं। दोनों की आत्मा को केवल अपनी-अपनी सफाई से ही सन्तोष होता है। क्या वे कभी यह भी सोचते हैं कि इस गन्दगी से दूषित होनेवाले वातावरण का प्रभाव हम पर भी पड़ेगा ?

हमारे घरों में स्त्रियाँ तरकारी का छीलन, बच्चों के गन्दे कपड़े, कूड़ा-करकट, बिना किसी हिचक के घर की खिड़की से या छत से बिना देखे इधर-उधर फेंक देती हैं। सड़क से जानेवाले आदमी के सिर या आँख पर चोट लगने और उनके कपड़े मैले होने का ध्यान ही नहीं होता। रेलवे स्टेशन, प्लेटफॉर्म, बाग-बगीचे, सड़क या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर फेंके हुए केले या नारंगी के छिलके कितनों की हड्डियाँ तोड़ देते हैं।

कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद एक बार वायसराय से मिलने जा रहे थे। तब तक स्वराज्य नहीं मिला था, बातचीत चल रही थी। शिमला जाते समय केले के छिलके पर पैर पड़ने से फिसलकर गिर पड़े, हाथ की हड्डी टूट गई। वायसराय-भवन की जगह अस्पताल ले-जाए गये। अभी कुछ ही दिन पूर्व एक लड़का अपनी बीमार माँ के लिए दवा ला रहा था। नारंगी के छिलके पर पैर फिसल जाने से वह गिर गया। शीशी फूट गई, और उसके टुकड़ों से वह बुरी तरह घायल हो गया। यदि इन छोटी-छोटी बातों पर हम ध्यान दें तो बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं से बच सकते हैं।"

सरला बहन ने स्वच्छता, अनुशासन और दूसरों के सुख का ध्यान रखने की बात समझाकर गोष्ठी का विसर्जन कर दिया।

आत्मा यज्ञेन कल्पताम्

आज सखि-संगोष्ठी का सातवाँ दिन था। मधु के घर सभी सखियाँ एकत्र हुईं। सरला जी भी स्वच्छ खद्दर की सफेद साड़ी पहने वहाँ आ पहुँची। उनको सबने 'नमस्ते' की और मधु ने बड़े आदर के साथ ऊँचे आसन पर बैठाया। सरला बहन के कहने पर भारती ने प्रभु-विनय का यह गीत गाया—

मैं निर्मल मन लिये भगवन् ! तेरे गुण गाने आई हूँ।
हे ज्योतिर्मय पिता ! तुमसे मैं ज्योति पाने आई हूँ।। टेक।।
हटे अज्ञान का पर्दा, समस्या हल यह हो जाए।
इसी से शान्ति-वेला में इसे सुलझाने आई हूँ।।२।।
बहाकर अश्रुधाराएँ, मिटा दे पाप-तापों को।
करूँ मैं मार्जन अपना, इसे चमकाने आई हूँ।।३।।
दो भक्तिदान हे भगवन् ! परम सुख-शान्ति के दाता !
रहूँ सम्पर्क में तेरे, यही वर पाने आई हूँ।।४।।
किये संसार में सबसे, सदा व्यवहार शुभ मैंने।
सरलता अपने जीवन की तुम्हें दिखलाने आई हूँ।।५।।

गीत समाप्त करने के बाद, थोड़ी देर शान्ति छाई रही। शान्ति को भंग करते हुए, भारती ने सरला बहन जी से पूछा—"बहन जी ! आपने पिछली गोष्ठियों में सत्यार्थ-प्रकाश, ओ३म्-महिमा, वेदवाणी, स्वास्थ्य-रक्षा, यज्ञ, स्वच्छता आदि के महत्त्व पर जो प्रकाश डाला है, हम सब उसे अपने जीवन में उतारने का प्रत्यक्ष लाभ परिवारों में देख रही हैं। आज आप हमें बताइये कि आत्मा क्या है? आत्मिक बल कैसे पा सकते हैं और आत्म-शुद्धि का क्या उपाय है?"

सरला बहन ने मुस्कराते हुए कहा—"बहन भारती ! तुमने तो आज बहुत ही रोचक प्रश्न पूछ लिया। तुम्हारे इस प्रश्न को सुनकर मुझे कठोपनिषद् के नचिकेता और यम, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी तथा नारद मुनि का ध्यान हो आया है। बहनो, हर-एक का जीवन 'शरीर और आत्मा के संयोग' पर निर्भर है। न हम शरीर की उपेक्षा कर सकते हैं, न आत्मा की। अपनी सन्तानों को हमें शारीरिक बल-प्राप्ति, भोजन, शुद्धि, शरीर-वस्त्रादि की स्वच्छता, व्यवस्था, अनुशासन के संस्कार देने के साथ ही, आत्मा के स्वरूप और सत्ता, आत्म-दर्शन का मार्ग, आत्मिक बल की प्राप्ति और आत्म-विश्वास की महत्ता से भी भली-भाँति परिचित कराना चाहिए। तभी वे सन्तानें 'दिव्यजन' बनेंगी और तभी हम वेद माँ की इस सूक्ति को चरितार्थ करेंगी—

'मनुर्भव जनयं दैव्य जनम्'

मनुष्य बनो और दिव्य जनों को उत्पन्न करो !"

कमलेश ने पूछा—"कठोपनिषद् की नचिकेता की कथा क्या है?"

सरला बहन ने बताया—"नचिकेता यह जानने के लिए यमराज के यहाँ पहुँचा कि आत्मा क्या है? यमराज उस समय वहाँ नहीं थे। वे तीन दिन बाद लौटे और अतिथि के तीन दिन तक बिना अन्न-जल के दरवाजे पर पड़े रहने की बात जानकर उसकी सेवा की और उसे तीन वर माँगने को कहा।

नचिकेता ने पिता की सन्तुष्टि, और यज्ञ-विषयक जानकारी के पहले दो वर माँगे। यमराज ने दोनों वर दे दिये। तीसरे वर में नचिकेता ने आत्मा के विषय में बतलाने को कहा। यमराज ने आत्मा-विषयक जानकारी देने से पूर्व उसकी परीक्षा के लिए कहा—'नचिकेता ! तू हाथी, घोड़े, संसार के सभी ऐश्वर्य, आयु, भोग-विलास, प्रकृति पर शासन, जो चाहे माँग ले, पर आत्मज्ञान बड़ा कठिन है, इसे मत माँग।'

नचिकेता आजकल का युवक नहीं था; उसने कहा, 'महाराज ! भौतिक वासनाएँ तो एक जन्म क्या, सैकड़ों जन्म लेते जाएँ तब भी नहीं मिटतीं, पर आत्म-तत्त्व जान लेने पर भौतिक जगत् स्वयं हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। भगवन्, मुझे आत्मा का ही उपदेश दीजिए।' यमराज ने उसे आत्मा का उपदेश दिया।

बृहदारण्यकोपनिषद् (४-५) में मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य में संवाद भी आत्मा से सम्बन्धित है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। कात्यायनी तो साधारण स्त्री थी; पर मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। एक बार घर-बार छोड़कर परिव्राजक (संन्यासी) बनने की याज्ञवल्क्य की इच्छा हुई। उन्होंने मैत्रेयी से कहा—'मैं परिव्राजक

बनना चाहता हूँ; इसलिए कात्यायनी के साथ तुम्हारे हिस्से का धन बाँट देना चाहता हूँ।'

कात्यायनी ने अपना हिस्सा ले लिया, पर मैत्रेयी ने पूछ लिया, 'यदि धन-धान्य से पूर्ण सारी पृथिवी ही मुझे मिल जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी?' याज्ञवल्क्य ने कहा—'नहीं, अमरता तो नहीं मिल सकती। हाँ, धनियों की तरह भौतिक साधन-सम्पन्न जीवन अवश्य हो जाएगा।' मैत्रेयी ने कहा—'जिसे पाकर मैं अमर नहीं बनूँगी, उसे लेकर क्या लाभ? भगवन्, आप अमरत्व-प्राप्ति का उपाय बताइये, आत्म-दर्शन का मार्ग बताइए।' तब याज्ञवल्क्य ने उसे आत्म-दर्शन का मार्ग बताया।"

मधु ने पूछा—"बहन जी! नचिकेता और मैत्रेयी की उपनिषद् की कथाएँ तो आपने सुना दीं, किन्तु यह नहीं बताया कि आत्मा क्या है? इसे कैसे पाया जा सकता है? इसके कैसे दर्शन हो सकते हैं?"

सरला बहन ने बताया—"आत्मा जन्म और मृत्यु से रहित है। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी वह मरता नहीं है।"

"आत्मा के दर्शन और प्राप्ति का क्या मार्ग है?" कमलेश ने यह प्रश्न पूछा।

सरला बहन बोली—"जैसे तिलों को पेरने से तेल और दधि को मथने से मक्खन ाया जाता है, अथवा नहर खोदने से पानी और अरणि-काष्ठ के रगड़ने से आग पायी जाती है, वैसे ही सत्य और तपस्या के द्वारा खोज करने पर अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं।"

मधु ने कहा—"बहन जी, आत्मा को मनुष्य क्यों भूल जाता है?"

सरला बहन ने एक कथा के माध्यम से उत्तर दिया—"बारह यात्री थे। वे एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। आगे बढ़े तो एक नदी आ गई। अब सब लोग घबराए कि नदी को कैसे पार करें? कोई पुल नहीं, नाव नहीं। पार जाना भी जरूरी है। कैसे जावें?

उनमें से एक चतुर था। उसने कहा कि पार जाना आवश्यक है तो एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो। हम सब मिलकर पार हो जायेंगे। सबने वैसा ही किया। पार हो गए। किनारे पर पहुँचने पर चतुर व्यक्ति बोला—'अब गिन लो, कहीं कोई नदी में तो नहीं छूट गया?'

एक बोला—'अरे भाई! हममें सबसे समझदार तू ही है, अतः तू ही गिन।'

उसने गिनना शुरू किया—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह। स्वयं को गिना नहीं। चौंककर बोला—'ये तो ग्यारह ही हैं। एक व्यक्ति कहाँ गया?'

इसके बाद दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें ने गिना। किसी ने भी अपने-आपको नहीं गिना, और बैठकर लगे रोने कि एक डूब गया।

राह-चलते लोगों ने देखा तो एक ने पूछा—'क्यों रोते हो?' उन्होंने बारह में से एक के डूबने की बात कही। राहगीर ने उन्हें मन-ही-मन गिना तो बारह-के-बारह सही निकले। उसने कहा—'देखो, यदि मैं तुम्हारे बारहवें साथी को खोज दूँ तो?' वे बोले—

'हम तुम्हें भगवान् की तरह मान लेंगे।'

अब क्या था! उसने सबको बैठाया और एक के गाल पर चपत मारकर कहा—बोल 'एक।' उसने कहा—'एक।' इसी प्रकार दूसरे और तीसरे के मुख पर चपत लगाता गया और सब-के-सब गिन डाले। अन्तिम यात्री ने कहा—'हाँ, बारह।' वे सब यात्री उसे भगवान् की तरह पूजने लगे।"

सब सखियाँ हँस पड़ीं।

सरला बहन मुस्कराते हुए बोली—"बहनो! तुम्हें इन यात्रियों की मूर्खता पर तो हँसी आती है, परन्तु हम भी तो उन्हीं मूर्खों की तरह हैं! हम बारह यात्री चले थे जीवन की इस यात्रा पर—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और बारहवाँ आत्मा। हमने भी आत्मा को भुला दिया। इन ग्यारह के लिए तो हम सब-कुछ करते हैं, परन्तु आत्मा के लिए कुछ भी नहीं। आत्मा की उपेक्षा के कारण ही हम दुःखी हैं, अशान्त हैं, हमें कहीं भी शान्ति नहीं। आओ, आत्मा को देखने और पाने की कोशिश करें।"

"आत्मा के दर्शन का मार्ग क्या है?" कमलेश ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—"यह हृदय से, बुद्धि से और मन से प्रकाशित होता है—

"हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो।"

"बहन जी, बात समझ में नहीं आई। इसे और स्पष्ट कीजिए।"

सरला बहन ने मुण्डक ३-१-५ का उल्लेख करते हुए कहा—"कमलेश, वहाँ आया है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

अर्थात् यह आत्मा सत्य से, तपस्या से, सम्यक् ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। यह शुभ्रवर्ण का है और प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्जगत् में विद्यमान है, इसे अपने हृदय को पापरहित करनेवाले योगी देख सकते हैं। सत्य, तपस्या, सम्यक् (ठीक) ज्ञान और ब्रह्मचर्य, ये चार चट्टानें हैं जो आत्मा की नींव और शक्ति को दृढ़ और अचल बनाती हैं। इन चट्टानों को आधार बनाकर जिस व्यक्ति, जिस समाज और जिस देश के जीवनरूपी भवन का निर्माण होगा, वह अडिग होगा। उसे किसी तरह का भूचाल अपने लक्ष्य की ओर जाने से रोक नहीं सकेगा। व्यक्ति, समाज, देश का जीवन इन्हीं से ठीक दिशा की ओर जाएगा।"

मधु बोली—"सत्य से आत्मा के दर्शन कैसे हो सकते हैं?"

सरला बहन ने समझाना शुरू किया—"भौतिक जगत् में जो स्थान प्रकाश का है आध्यात्मिक जगत् में वही स्थान सत्य का है। प्रकाश को ढका तो जा सकता है, फिर भी वह प्रकट हो जाता है। इसी तरह सत्य को भी छिपाया जा सकता है, पर मिटाया नहीं जा सकता। सत्य से ही आत्मा के दर्शन होते हैं।

याद रक्खो, सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं—**न हि सत्यात्परो धर्मः।** सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही कहना आर्य बालक-बालिकाओं का स्वभाव होना चाहिए।

सत्यवादियों का ही सर्वत्र मान होता है। सत्यवादी ही विद्या, लक्ष्मी, श्री और सम्पदा की ओर बढ़ते हैं—इस विश्वास के साथ सदा सत्य का आचरण करो। अपनी भूल या त्रुटि को छिपाने के लिए कभी झूठ न बोलो ! दण्ड या अप्रतिष्ठा से बचने के लिए भी कभी असत्य का आश्रय न लो। बहनो ! आकाश में जिस प्रकार सूर्य तपता है और लोक-लोकान्तर में उजाला करता है, उसी प्रकार सत्यवादी उदीयमान होकर संसार का मार्ग-प्रदर्शन करता है।

कभी भूलकर भी झूठ न बोलो ! मधु, याद रक्खो कि खेल या विनोद में भी असत्य भाषण न करो। माता-पिता, भाई-बहन, गुरु-सहपाठी, सखा-सेवक सबसे सत्य ही बोलो ! सत्य बोलनेवाले के हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं। उसकी आत्मा में अपूर्व बल आता है। सत्यवादी ही लोक और परलोक का विजेता बनता है।

सत्य से बनते उच्च महान्।
सत्य से मिलते हैं भगवान्॥

कमलेश बहन ! आत्म और अनात्म का, सत्य और झूठ का, अंधेरे और उजाले का झगड़ा नित्य और शाश्वत है। प्रकाश तो भौतिक होने से बुझ सकता है, किन्तु सत्य अभौतिक है, दिव्य है जिसे ढका तो जा सकता है, किन्तु मिटाया नहीं जा सकता।"

सरला बहन की सत्य-विषयक वार्ता सुनने के थोड़ी देर बाद तक वहाँ स्तब्धता छाई रही। उस स्तब्धता को भंग करते हुए भारती ने शंका उठाई—"हम दुनिया में देखते हैं कि सत्यवादियों को बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। उन कष्टों से बचने के लिए थोड़ा असत्य व्यवहार कर दिया जाय तो क्या हानि है ?"

"भारती !" सरला बहन ने कहा—"हानि यह है कि इससे सत्य ढक जाता है और एक गलत मार्ग पर दुनिया चलने लगती है। जीवन-भर गलत मार्ग पर भटकने से यही अच्छा है कि थोड़ा कष्ट सह लिया जाए। जो कष्ट से घबरा गया वह लक्ष्य कैसे पाएगा ?"

इतिहास साक्षी है कि अन्तिम विजय सत्य की होती है। सत्यवादियों ने सदा बुराइयों का सामना किया है।"

भारती बोली—"है कोई ऐसा ऐतिहासिक उदाहरण ?"

सरला बहन ने कहा—"यूनान देश का नाम तो तुमने सुना ही होगा, और यूनान को अमर करनेवाले अरस्तू, प्लेटो और सुकरात को सारा जगत् जानता है। सुकरात को वहाँ के राजा ने फाँसी की सजा दे दी थी। उस समय जिसे फाँसी दी जाती थी, उसके सामने जहर का प्याला रख दिया जाता था और उसे निर्धारित समय पर पीना पड़ता था। सुकरात के सामने निश्चित दिन वह प्याला रख दिया गया और सुकरात पीने के लिए तैयार होकर आ गए। हजारों से भी अधिक उनके शिष्य सामने बैठ गए। शिष्यों की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्हें रोते देखकर सुकरात मुस्कराते हुए बोले—'मेरे प्यारे युवको ! क्या मैंने तुमको यही सिखाया है कि मैं मरूँ और तुम लोग रोओ ? कई बार तुम्हें बताया है कि इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती,

इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। यह आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र को ग्रहण करता है, वैसे यह जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नया शरीर प्राप्त करता है। बस, जीवन और मृत्यु का रहस्य इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए मेरी मृत्यु से घबराओ नहीं।' सुकरात ने विष का प्याला पीते हुए आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास का परिचय दिया। उसने सत्य से मुँह नहीं मोड़ा और प्राण देकर भी सत्य पर अडि रहा।"

भारती ने कहा—"बहन जी ! मुझे एक कवि की कविता याद रही है। कवि कहता है—

न जन्म कुछ, न मृत्यु कुछ, बस सिर्फ इतनी बात है,
किसी की आँख खुल गई, किसी की आँख मुँद गई।"

"जन्म और मरण का सचमुच बहुत सुन्दर चित्र खींचा है कवि ने !" सरला बहन बोली—"वास्तव में यह सब भारतीय संस्कृति की देन है। इतिहास-पुरुष वीर सावरकर जहाँ परम देशभक्त थे, वहाँ वे भारतीय संस्कृति के उपासक भी थे। अपनी मातृभूमि के लिए उन्होंने पूरे २७ वर्ष अण्डमान के कारागार में बिताये। मृत्यु की विभीषिका से भयभीत न होनेवाले उस महापुरुष ने कहा था—

'काल स्वयं मुझसे डरा, मैं नहीं। कई बार फाँसी के फन्दे को चूमकर, उस कराल-स्तम्भों को चूमता हुआ लौट आया हूँ। मैं जीवित रहा, यह मृत्यु की पराजय थी।'

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण भरे पड़े हैं जो सत्य की महिमा प्रतिष्ठित करते हैं।"

मधु ने पूछा—"क्या आत्म-विजयी मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होता ?"

सरला बहन बोली—"बिल्कुल नहीं; इसी का नाम आत्म-विजय है। स्वामी श्रद्धानन्द ने आत्मा की वास्तविकता को पहचान लिया था, तभी तो मौत से जूझ पड़े। दिल्ली में स्वतन्त्रता-प्रेमियों का एक विशाल जुलूस निकल रहा था। जुलूस का भार स्वामी जी पर था। जुलूस आगे बढ़ रहा था। अंग्रेजों की शक्तिशाली सेना अपने घातक अस्त्रों से सुसज्जित जुलूस के सामने आकर खड़ी हो गई और जुलूस को तितर-बितर होने का आदेश दिया। स्वामी श्रद्धानन्द व्यवस्था कर रहे थे। सूचना मिलते ही आगे आए। वे दूसरों को आगे बढ़ने को नहीं कहते, स्वयं आगे बढ़ते हैं। वे दूसरों को सिर कटाने को न कहते, स्वयं सिर कटाने को उद्यत रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द आत्म-विजेता थे, आत्मज्ञ थे। बन्दूकों के सामने सीना तानकर वह बोले—'जुलूस अवश्य आगे जाएगा ! यदि तुम जुलूस पर गोली चलाना चाहते हो तो पहले मेरी छाती पर गोली मारो !' इतना कहना था 'स्वामी श्रद्धानन्द की जय' और 'भारत माता की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा। अंग्रेजों की बन्दूकें झुक गईं। यह थी पशुता की शक्ति के सामने आत्म-शक्ति की विजय।

भारती ! तुम्हें मैंने स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित्र पढ़ने को दिया था अ

मने पड़ा ही होगा। महापुरुषों के जीवन-चरित्र ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन करते हैं। स्वामी यानन्द की आत्मिक शक्ति के चमत्कारों से पुस्तक का एक-एक पन्ना भरा पड़ा है। पत्थरों ी वर्षा हो रही है, एक उज्ज्वल दिव्यात्मा दयानन्द के रूप में खड़ी होकर सत्य का मण्डन ौर असत्य का खण्डन कर रही है। पत्थरों की वर्षा से घबराकर श्रोता भागने लगते हैं, यानन्द के भक्त विचलित हो उनसे भाषण बन्द करने को कहते हैं, परन्तु स्वामी दयानन्द स्कराते हुए उत्तर देते हैं—यह पत्थरों की वर्षा नहीं, फूलों की वर्षा है ! सत्य संकटों से वकसित होता है, सत्य कठिनाइयों में फूलता-फलता है, सत्य आपत्तियों में खिलता है, त्य मुसीबतों में चमकता है। पत्थरों को भी फूल समझनेवाला दिव्य दयानन्द अपने धीर म्भीर स्वर से असत्य का खण्डन करता चला जाता है। आत्म-शक्ति से भरे हुए भाषण ा प्रभाव पड़ता है। भागने को तैयार जनता रुक जाती है, भागे हुए जन लौटने लगते हैं ौर आत्म-शक्ति का चमत्कार साक्षात् दीखने लगता है।

कमलेश वहन ! एक दिन सत्य का मण्डन करते हुए इस महापुरुष पर किसी ने यंकर फणिहर (गेहुँअन) साँप फेंक दिया। यह बड़ी भयंकर जाति का साँप है; काट ले ा आदमी पानी भी न माँगे। सभा में भगदड़ मच जाती है, परन्तु वह साँप स्वामीजी के ले में फूलों की माला की तरह शोभित होने लगता है। शोभित हो भी क्यों न ? जिस रह शंकर ने विश्व का विष (कष्ट) पीकर उसका कल्याण किया था, वैसे ही मूलशंकर भी किया। इस दयानन्द का 'मूल' नाम ही कल्याणमय 'शंकर' था, तभी तो दयानन्द नकर संसार के अज्ञान, पाप, कष्ट, दुःख और अन्याय को मिटाने के लिए इस भूमि पर वतरित हुए !"

सरला वहन की यह वक्तृता सुनकर भारती ने एक कविता सुनाई—

साकार 'दया' की दिव्य मूर्ति
'आनन्द' के तुम आधार बने।
वेदों का तत्त्व दिया जग को,
तुम सत्य स्वयं साकार बने।
कर लिया गरल का पान स्वयं
वसुधा को अमृत दान दिया।
जो पावन कर दे अग-जग को,
निर्मल गंगा की धार बने।
सत्यार्थप्रकाश के व्याख्याता,
तुम सत्य अर्थ के थे ज्ञाता।
ऋषिवर, तुमको मेरा वन्दन,
हम करते शत-शत अभिनन्दन।

जग्गो ने कहा—"बहन जी ! शास्त्र भी यही कहते हैं कि 'अहं आत्मा न शरीरम, इन्द्रो न इन्द्रियम्' अर्थात् मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं; मैं ऐश्वर्यशाली हूँ, इन्द्रिय नहीं।' इस बात का है कि हमारा सारा ध्यान शरीर की ओर ही केन्द्रित रहता है, इसी को ने में लगे रहते हैं। हमें अपने वालकों व वालिकाओं में सत्यशीलता आदि आन्तरिक

सद्गुण जगाने का भी प्रयत्न करना चाहिए, जिससे उन्हें आत्मस्वरूप का बोध हो और वे आत्मिक बल से युक्त हों। आत्म-शक्ति और आत्म-विश्वास ही तो वे चट्टानें हैं जिन पर खड़े होकर हम स्वयं भी धन्य होंगी और अपने राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने में सहायक होंगी।"

जग्गो की बात सुनकर मनोरमा ने एक हिन्दी की कविता सुनाई—

मानव, अपना अपमान न कर!
इससे बढ़ कोई पाप नहीं,
मानवता पर अभिशाप नहीं।
तू अपने को पहचान जरा,
परवशता का तू भान न कर! मानव···

तू परवश या लाचार नहीं,
विधि का तुझ पर अधिकार नहीं।
तू ईश्वर-नन्दन है, ओछी-
गन्दी माया का मान न कर। मानव···

निज को तूने लाचार कहा,
सब जग ने तुझे धिक्कार कहा।
तू स्वाभिमान के पंख खोल,
दिग्दिगन्त में उन्मुक्त विचर!
मानव अपना अपमान न कर!!

अन्त में सरला बहन ने सामूहिक गान करवाया—

जिस नर में आत्मिक शक्ति है, अन्याय से झुकना क्या जाने?
जिस दिल में ईश्वर-भक्ति है, वह पाप कमाना क्या जाने?
माँ-बाप की सेवा करते हैं, उनके दुःखों को हरते हैं।
वे मथुरा, काशी, हरिद्वार, वृन्दावन जाना क्या जानें?
दो काल करें सन्ध्या व हवन, नित सतसँग में जो जाते हैं।
भगवान् का हो विश्वास जिन्हें, दुःख में घबराना क्या जानें?
जो खेला है तलवारों से, और अग्नि के अंगारों से।
समरांगण में जा के पीछे, वह कदम हटाना क्या जाने?
हो कर्मवीर और धर्मवीर, वेदों को पढ़नेवाला हो।
वह निर्बल दुःखिया बच्चों पर, तलवार चलाना क्या जाने?
मन-मन्दिर में भगवान् बसा, जो उसकी पूजा करता है।
पत्थर की नश्वर प्रतिमा पर, वह फूल चढ़ाना क्या जाने?
जिसका अच्छा आचार नहीं, और धर्म से जिसको प्यार नहीं,
जिसका सच्चा व्यवहार नहीं, 'नन्दलाल' का गाना क्या जाने?

वह घर स्वर्ग समान बने !

आज सहेलियों की वार्ता का आठवाँ दिवस था। आज की बैठक बहन मनोरमा के हाँ थी। बैठक में सरलाजी भी पहुँच चुकी थीं और ठीक सात बजे संध्या-हवन का कार्य-म प्रारम्भ हो गया। सन्ध्या-हवन के बाद सरला बहन ने संकीर्तन आरम्भ किया—

चारों तरफ हो माधुरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !
बहती हो सुख की सुरसरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वायु मधुर-मधुर बहे, शीतल सुगन्ध को लिये,
दुर्गन्धियों का नाश हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
नदियाँ, समुद्र, ताल सब, मीठे जलों से हों भरे,
समय-समय पर वृष्टि हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वृक्ष, लता, वनस्पति, मीठे फलों से हों लदे,
पृथिवी हो शस्य-श्यामला, ऐसा वरदान दो प्रभो!!
प्रातः मधुर, निशा मधुर, सायं मधुर, उषा मधुर,
माधुर्य से कण-कण भरे, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वाणी मधुर, मानस मधुर, मधुरा हो सारी भावना,
भ्रातृत्व का विस्तार हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
चारों तरफ हो माधुरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !!

संगीत की समाप्ति पर वास्तव में ही चतुर्दिक् माधुरी-सी बरसने लगी। मनोरमा परिवार को सुखी बनाने के साधनों पर प्रकाश डालने के लिए सरला जी से प्रार्थना ।

सरला बहन ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा में कहा—"बहनो ! यों तो अभी तक की ष्ठियों में हम जो कुछ विचार कर चुकी हैं, पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए सभी बातें आवश्यक हैं, परन्तु आज विशेष रूप से परिवार से सम्बन्धित बातों पर ही ाश डालूँगी। सबसे पहले यह सोचो कि मनुष्य-जन्म को ऋषियों ने कितने भागों में टा है?"

थोड़ी देर सोचने के बाद भारती ने कहा—"बहनजी, मनुष्य के सामान्य जीवन अवधि को सौ वर्ष निर्धारित करते हुए, उसे चार आश्रमों में बाँटा गया है। ये चार श्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य ब्रह्मचारी कर बल-वीर्य का संग्रह करता है; शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों इकट्ठा करता है, फिर इन संचित शक्तियों को गृहस्थ के विभिन्न कार्यों में खर्च करता गृहस्थ के २५ वर्षों में वह अपनी शक्तियों को आजीविका, पत्नी, सन्तान, सम्बन्धीजन र गृहस्थ के अन्य कामों में खर्च करने के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। नप्रस्थ में ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, जप एवं तप के द्वारा वह उन्हें गुणीभूत करता है, अर्थात् ाता है। उसके बाद अपने ज्ञान, विज्ञान एवं अनुभव को सामाजिकों में बाँटने को संकल्प हो जाता है, यही उसकी संन्यासाश्रम की दीक्षा का समय होता है। सभी

आश्रमों का बोझ गृहस्थ ही उठाता है, अतः गृहस्थाश्रम की अपनी विशेष महत्ता, उपयोगिता और उपादेयता है। इसी गृहस्थाश्रम को सुखी बनाने के उपायों पर बहन जी प्रकाश डालेंगी।"

सरला बहन ने कहा—"जैसा कि भारती बहन ने मानव-जीवन के चारों आश्रमों के विषय में बतलाया है, वही परम सत्य है। इनमें गृहस्थाश्रम का विशिष्ट महत्त्व है। सबसे पहला तो यह कि इस आश्रम के कारण हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है। दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, फूफा-फूफी, नाना-नानी, मौसी-मौसा, मामा-मामी, श्वसुर-जामाता, सास-बहू, बेटा-बेटी, भाई-बहिन, पोते-पोती, धेवते-धेवती के रिश्ते गृहस्थाश्रम के ही परिणाम हैं। इन सम्बन्धों से मनुष्य अपने-आपको अकेला और असहाय नहीं अनुभव करता। इस गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने के लिए, गृहस्थ का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए माता-पिता को बहुत ध्यान देना होता है।"

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहनजी, हमें किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?"

सरला बहन ने बताया—"कामेच्छा मनुष्य की एक प्रबल प्रवृत्ति है। यदि गृहस्थाश्रम का विधान न हो तो कामेच्छा (सेक्स) भयंकर और वीभत्स रूप धारण करके समाज के सुन्दर एवं स्वस्थ रूप को कुरूप बना दे। अव्यवस्था में पुरुष और स्त्रियाँ वैसे ही रतिक्रिया न करते, जैसे पशु और पक्षी करते हैं। वासनात्मक, एवं मर्यादाहीन वातावरण से बच्चों को बचाने, उनमें शिष्टता और सभ्यता लाने के लिए गृहस्थाश्रम द्वारा काम पर नियन्त्रण आवश्यक है। इससे मनुष्य के जीवन में संयम आता है।"

मनोरमा ने पूछा—"गृहस्थ का भग (ऐश्वर्य) क्या है?"

सरला बहन ने कहा—"यशस्वी जीवन और श्री-सम्पन्नता।" सरला बहन ने अपने विषय को बढ़ाते हुए कहा—"गृहस्थ जो भी कार्य करे, वह शोभावाला हो। 'घर' उसी को कहा जा सकता है जहाँ प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखी हुई हो, मैलापन कहीं नाम को न हो, सर्वत्र चमक-ही-चमक हो। महाभारत में एक सुन्दर वर्णन आता है—

किसी ने लक्ष्मी से पूछा—तुम कहाँ रहती हो? लक्ष्मी ने उत्तर दिया—जो स्त्रियाँ कमनीय गुणों से युक्त, विद्वानों और बुद्धिमानों की सेवा में तत्पर, घर के बर्तन और भांडों को स्वच्छ रखनेवाली, गौओं की सेवा तथा धन-धान्य-संग्रह में तत्पर रहती हैं, मैं सदा उनमें रहती हूँ। इसके विपरीत, जो घर के बर्तनों को सुव्यवस्थित नहीं रखती, सोच-समझकर काम नहीं करती, सदा अपने पति के विरुद्ध बोलती है, दूसरों के घरों में घूमने-फिरने में आसक्त रहती है और लज्जा छोड़ देती है, उसको मैं त्याग देती हूँ।"

मधु ने पूछा—"सुघड़ गृहिणी किसे कहते हैं?"

"सुघड़ गृहिणी को सदा प्रसन्न रहना चाहिए; घर के कार्यों में अत्यन्त दक्ष और निपुण हो, घर में व्यवस्था रक्खे, खर्च आदि भी व्यवस्थित रूप में करे।" सरला बहन बोली।

रजनी भी गोष्ठी में आती थी। वह नव-विवाहिता थी। उसकी सास उसके विरुद्ध बोलती थी और हर समय डाँटती थी। वह उदास चेहरे के साथ बोली, "सास को सन्तुष्ट

रखने का क्या उपाय है?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी! एक गाँव में एक महात्माजी आए थे। उनकी कथा में हजारों नर-नारी आते थे। कथा समाप्त होनेवाले दिन वे एक घर में गए। सास और बहू वहाँ दो ही स्त्रियाँ थीं। दोनों ने प्रार्थना की कि 'कुछ सुनाते जाइए।'

साधु महाराज कुछ बताना ही चाहते थे कि संग्रहणी रोग से पीड़ित सास शौचार्थ चली गई। उस समय बहू स्वामीजी के पास आकर बोली—'महाराजजी, यदि आप सास को कुछ उपदेश कर दें तो बड़ी कृपा होगी। वह नागिन मुझे हर समय डाँटती और डपटती रहती है। मैं तो इसके हाथों जीते-जी मर रही हूँ।'

महात्माजी बोले—'बेटी! उसे तो उपदेश दूंगा ही, एक छोटी बात तुझे भी कहनी है। जब तेरी सास तुझे डाँटे तो हाथ जोड़कर इतना ही कहना—निभा लो, तुम्हारी ही हूँ।'

सास को आने में बहुत देर हो गई। महात्माजी की गाड़ी का समय हो गया तो वे चले गए।

दो वर्ष बाद महात्माजी फिर वहाँ आए तो सास उनके पास पहुँची और हाथ जोड़कर बोली—'आपने कौन-सा जादू कर दिया कि हमारा तो भाग्य ही पलट गया है! घर स्वर्गधाम बन गया है! पहले घर में प्रतिदिन लड़ाई होती थी। यदि मैं भूल से भी कुछ कह देती, तो बहू तुरन्त सुना देती थी—दूसरी बहू खोज लेनी थी न! परन्तु जिस दिन से आपने उपदेश दिया है, उस दिन से वह बिल्कुल बदल गई है। घर में कभी घी-दूध फैल जाए और मैं डाँटने लगती हूँ तो बहू हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगती है—सासजी! निभा लेना, जैसी भी हूँ तुम्हारी ही हूँ। साग में नमक ज्यादा पड़ जाए और मैं घुड़कने लगती हूँ कि माँ ने साग बनाना भी सिखाया है या नहीं? तो वह नम्रता से कहती है—माँ ने तो नहीं सिखाया, परन्तु आप भी तो मेरी माँ ही हैं, आपसे सीख लूँगी। बहू में यह परिवर्तन देख मेरा तो हृदय भर आता है। मेरे मुँह से निकलता है—अरी बहू! निभा लेना क्या, तुझे तो मैं सिर-आँखों पर बिठाऊँगी। मेरे पाँच-सात बहुएँ थोड़े ही हैं! यदि हों भी तो तुझे आँखों की पुतली समझूँगी, अपनी छाती से लगा लूँगी। बस, उसी दिन से घर में लड़ाई-झगड़े का नाम भी नहीं है। प्रेम का समुद्र हिलोरें मारता रहता है। आनन्द और शान्ति का साम्राज्य है। हमारा घर स्वर्ग बन गया है।"

सरला बहन की वक्तृता सुनकर सबकी चेतना जागृत हुई। भारती ने कहा—"बहनजी, घरों में जो शान्ति नहीं, क्या इसका कारण एक-दूसरे की निन्दा और आलोचना नहीं?"

सरला बहन ने कहा—"बचपन में एक कहानी पढ़ी थी। एक था काँच का विशाल महल। उसमें भटकता हुआ कहीं से एक कुत्ता घुस आया। हजारों काँच के टुकड़ों में अपनी शक्लें देखकर वह चौंका। उसने जिधर नजर डाली, हजारों कुत्ते दिखाई दिए। उसने समझा कि ये सब कुत्ते उस पर टूट पड़ेंगे और उसे मार डालेंगे। अपनी शान दिखाने के लिए वह भौंकने लगा। उसे दूसरे कुत्ते भी भौंकते दिखाई दिए। आखिर वह इन कुत्तों पर झपटा; वे भी उस पर झपटे। बेचारा जोर-शोर से उछला, कूदा, भौंका और

चिल्लाया। अन्त में गश खाकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद दूसरा कुत्ता उस महल में आया। उसको भी हजारों कुत्ते दिखाई दिए। वह डरा नहीं। उसने धीरे से अपनी दुम हिलाई। सभी कुत्तों की दुम हिलती दिखाई दी। वह खूब खुश हुआ और प्रसन्नता से उछला-कूदा। अपनी ही छाया से खेला, खुश हुआ और फिर पूँछ हिलाता चला गया।"

"इस कहानी का गृहस्थाश्रम की शान्ति से क्या सम्बन्ध है?" जग्गो ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—"इस कहानी में जो दो प्रकार के कुत्तों का वर्णन है, वह मनुष्यों के आपसी व्यवहार का एक ठोस दृष्टांत है। डर और सन्देह हमारे जीवन को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, यह पहले कुत्ते के व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है। दूसरे कुत्ते में स्वाभिमान और आत्म-विश्वास है, इसलिए उसके दुम हिलाने को प्यार की निशानी समझकर सभी उसके रंग में रँग जाते हैं। डर और सन्देह की दुर्भावना ने आज हमारा पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न कर डाला है, पारस्परिक सद्भावना नष्ट हो गई है। भाई-बहन, पिता-पुत्र, माता-बेटी एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गए हैं। हम भी उन कुत्तों की तरह इस दुनिया के काँच के महल में घुस आए हैं। हमारे स्वभाव की छाया पूरे परिवार पर पड़ती है। हम यह कहावत भूल जाते हैं कि 'आप भले तो जग भला, आप बुरे तो जग बुरा।' हमारे परिवारों में, और समाज में भी, निन्दा का दोष काफी दिखाई देता है। परिवार में प्रेम बढ़ाने के लिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का दायित्व अधिक है। सबसे पहली बात यह है कि हम एक-दूसरे की निन्दा से बचें। हम किसी के गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकतीं तो हमें दूसरों की निन्दा करने का भी कोई अधिकार नहीं।" सरला बहन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"परिवारों में साधारणतया प्रत्येक स्त्री यह अनुभव करती है कि जब मैं बहू थी तो सास अच्छी नहीं मिली और अब मैं सास बनी तो बहू अच्छी नहीं मिली। जानती हो मधु, इसका कारण क्या है?"

मधु कोई उत्तर न दे पाई।

सरला बहन मुस्कराई और उसने स्वयं ही उत्तर देते हुए कहा—"इसका सबसे मुख्य कारण है—अधिकार की भावना। सब पर अधिकार जमाने के चक्कर में मनुष्य अपना कर्त्तव्य ही भुला देता है।"

मनोरमा पॉलिटिक्स (राजनीतिशास्त्र) की छात्रा थी; झट से बोली—"बहन जी! अधिकार और कर्त्तव्य को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। ये एक ही चीज के दो पहलू हैं। यदि कोई उनको अपनी दृष्टि से देखे तो वे उसके अधिकार हैं, और कोई उनको दूसरे की दृष्टि से देखे तो वे उसके कर्त्तव्य हैं। अधिकार और कर्त्तव्य अभिन्न हैं। वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं, प्रत्युत पूरक हैं।"

रजनी ने कहा—"मनोरमा बहनजी की बात सत्य लगती है। मैं सड़क पर चल रही हूँ, उधर से मनोरमा बहन आ रही हैं। यदि दोनों सड़क पर चलने के अधिकार की पूर्ति में लगेंगी तो कोई भी आगे नहीं बढ़ेगा। उनका अधिकार मेरा कर्त्तव्य है और मेरे अधिकार की पूर्ति उनका कर्त्तव्य है।"

सरला बहन ने एक घटना सुनाते हुए कहा—"एक अच्छे समृद्ध घराने में एक

नवयुवक का विवाह हुआ। विवाह से पूर्व उस घर में बड़ा स्नेह था। भोजन के बाद सब इकट्ठे होते, गप्पें चलतीं, रेडियो और टेलीविजन सुनते-देखते, दिन में सब मिलकर खाते-पीते, आनन्दमय वातावरण था। विवाह के बाद परिस्थिति बदली और वह नवयुवक अब परिवार के लोगों को छोड़ अपनी बीवी के घर में चला जाता, वहीं खाना खाता, रात बिताता, सवेरे बिना किसी से मिले-जुले वह अपने काम पर चला जाता। धीरे-धीरे इस व्यवहार के कारण ईर्ष्या, द्वेष, व्यंग्य, कटाक्ष और खुला विरोध बढ़ा। सास बहू से बुरा-भला कहती और बहू सास पर व्यंग्य-बाण चलाती। वास्तव में कौन दोषी था? विचार करने पर पता चलेगा कि यदि वह स्त्री अपनी कर्त्तव्य-भावना को जगाकर अपने आनन्द में अपने पति के माता-पिता और भाई-बहनों को सम्मिलित कर लेने की प्रेरणा देती तो यह दुःखद प्रतिक्रिया न होती। इन दोनों का यह कर्त्तव्य था कि वे भोजन करने, रेडियो सुनने, टेलीविजन देखने, वार्तालाप में और घर के अन्य छोटे-मोटे कामों में घरवालों का साथ देते तो परिवार में वैमनस्य न आता। यह काम और उत्तरदायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री का अधिक है, क्योंकि वही घर की स्वामिनी है।"

मधु ने पूछा—"बहनजी, पारिवारिक सौमनस्य के लिए हमें क्या करना हिए?"

सरला बहन ने कहा—"पारिवारिक स्नेह के लिए, संघर्ष से बचने के लिए, हमें सके मनोवैज्ञानिक कारण को समझना चाहिए। घरों में सास, ननद और पतोहू में जो झगड़े होते हैं, उनमें सास की हीन-ग्रन्थि (इन्फीरियोरिटी कॉम्प्लैक्स) के कारण आलोचना या विरोध शुरू हो जाता है। ऐसे समय पतोहू का कर्त्तव्य है कि उससे संघर्ष करने, उसे चिढ़ाने या लड़ने के स्थान पर उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार करे कि उसे नाराज होने का अवसर ही न मिले। उदाहरण के लिए घर का काम-काज सुचारु रूप से करने के कारण बहू की प्रशंसा होते देख यदि सास को ईर्ष्या होती है, तो बहू को उस सुष्ठुता का कारण अपनी सास को बताना चाहिए और उसे ही श्रेय देते रहना चाहिए। इससे कुछ बनता-बिगड़ता तो है नहीं, हाँ, सास अवश्य प्रसन्न होगी और घर में सुमनसता आएगी।"

मनोरमा बोली—"बहू तो कमसमझ होती है, मेरे विचार में सास को भी अपनी बहू को बेटी समझकर उसकी छोटी-छोटी भूलों की उपेक्षा करनी चाहिए और उसे ढंग से सुधारना चाहिए। दाल-तरकारी में नमक अधिक पड़ जाने, किसी वस्तु के गिरकर टूट जाने, कोई काम समय पर न हो सकने पर बहू का अपमान नहीं करना चाहिए। किसी भी अपराध के लिए सबके सामने उसे लज्जित करना उचित नहीं। बहू को सुघड़ और व्यवस्थित बनाने के लिए आलोचना या निन्दा से नहीं, सहानुभूति से काम लेना चाहिए।"

सरला बहन ने मुस्कराते हुए कहा—"ताली दोनों हाथों से बजा करती है, मनोरमा बहन! इसीलिए अथर्ववेद के ३-३०-१ मन्त्र में बताया गया है—'हे मनुष्यो! एकचित्तता, सहृदयता, सम्मनस्कता, सम-विचार द्वारा पारस्परिक प्रेम को बढ़ाओ और एक-दूसरे से ऐसा प्रेम करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से करती है।' प्रीति सम्पादन करनेवालों को

यह समझ लेना चाहिए कि प्रीति की रीति न्यारी है। जिनके दिल एक नहीं, जिनके चित्त की भावनाएँ भिन्न-भिन्न हैं, उनमें प्रीति कैसे हो सकती है? प्रेम चित्त की सूक्ष्म भावनाओं में से एक है। जब चित्त की धाराएँ विरुद्ध दिशाओं में बहें, तब कैसे अनुराग हो सकता है? जब मन एक-सा न सोचते हों, तब आपस में प्रेमभरा सम्बन्ध कैसे बने? इन नियमों का समाज की भाँति परिवार में भी पालन होना चाहिए।"

मनोरमा ने पूछा—"क्या परिवार पति-पत्नी तक ही सीमित है?"

सरला बहन ने उत्तर में कहा—"परिवार केवल पति-पत्नी तक ही सीमित नहीं, इनसे भी आगे है। पुत्र, भाई, बहन, माँ-बाप और बड़े लोग भी परिवार के अंग हैं। वेद में कहा गया है—पुत्र पिता के अनुकूल व्रतवाला हो, सन्तान का मन माता-पिता के मन के साथ मिला हो, पत्नी पति के साथ मीठी वाणी बोले तो परिवार स्वर्ग बन सकता है।"

"पुत्र किसको कहते हैं?" उमा ने पूछा।

"जो अपने आचरण से पिता को प्रसन्न करे वही पुत्र है। पत्नी वही है जो अपने पति की हित-कामना करनेवाली है। पुत्र का अर्थ करते हुए कहा गया है—

पुनाति त्रायते चैव कुलं स्वं योऽत्र शोकतः।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

अर्थात् पुत्र अपने कुल को पवित्र करता है और शोक से बचाता है। इसीलिए बुद्धिमान् लोग पुत्र को पुत्र कहते हैं।"

"परिवार में क्या भाई-बहन भी आते हैं?" उमा ने पूछा। उमा नवागन्तुका थी।

सरला बहन बोली—"परिवार में वे सभी आते हैं जो एक छत के नीचे इकट्ठे रहते हैं। भाई अपने भाई से, बहन अपनी बहन से और भाई अपनी बहन से द्वेष न करे। उनकी चाल और व्यवहार एक हों। भाई-बहन का सम्बन्ध अनादि है, सहज है, सार्वभौम है। यही एक सम्बन्ध है जो निर्विकार, निष्काम और समानतापूर्ण है।"

उमा ने फिर पूछा—"बहन जी! इस अवसर पर आप यह भी स्पष्ट कीजिए कि माता-पिता और बड़े लोग बच्चों से कैसा सम्बन्ध रक्खें?"

सरला बहन ने कहा—"यह भी एक आवश्यक प्रश्न है। इस प्रसंग में बालकों के साथ माता-पिता के व्यवहार की बात भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। कुछ माताएं बात-बात में बच्चों पर झुंझलाकर मारती-पीटती रहती हैं, उन्हें झिड़कती और अपमानित करती रहती हैं; यह ठीक नहीं। जहाँ अनुचित लाड करके अथवा बालक के अपराधों के प्रति उपेक्षित रहकर माता-पिता अपने ही हाथों अपने बालक का सर्वनाश कर लेते हैं, वहाँ अनावश्यक ताड़ना भी बालक को ढीठ बना देती है। अच्छे माता-पिता बाल-मनोविज्ञान का विचार करके, बालक को पूरा-पूरा प्यार भी देते हैं, साथ ही उन्हें छोटे-छोटे कार्यों में लगाकर आज्ञापालक, अनुशासनप्रिय, चतुर व व्यवस्थित भी बनाते हैं। दूसरों के सामने वे कभी बालक की निन्दा नहीं करते। हाँ, एकान्त में प्यारपूर्वक उनके दोषों को हटाते हैं और उनके उत्तम कार्यों की प्रशंसा करते हैं। विशेष अवसरों पर उपहार और पारितोषिक भी देते हैं। उन्हें अच्छे स्थानों पर साथ भी ले जाते हैं। मुख्य बात यह है

कि उनमें पूर्ण रुचि लेते हैं।"

उमा ने फिर पूछा—"बहन जी, क्या माता-पिता के कार्य और आचरण का प्रभाव भी बच्चों पर पड़ता है?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी! यह तो बहुत ही अच्छी बात तुमने पूछी। बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही बालक या अबोध बच्चे भी आचरण करते हैं। माँ-बाप गाली देते हैं तो बच्चे भी गाली देने लगते हैं, माँ-बाप बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तो बच्चे भी पीने लगते हैं। माँ-बाप घर में रहते हुए भी बच्चे से कहते हैं कि 'जाओ, कह दो पिता जी घर में नहीं हैं' तो वह असत्य बोलना सीखने लगता है। एक बार की बात है कि एक व्यक्ति ने अपने बच्चे से कहा कि मकान-मालिक से कह दो कि पिताजी नहीं हैं। अबोध बालक गया और उसने कहा, 'पिताजी कह रहे हैं कि वह घर में नहीं हैं।' यह सुनकर आगन्तुक तो मुस्कराने लगा, परन्तु पिताजी बच्चे पर बहुत क्रुद्ध हुए और एक जोर का चाँटा भी जड़ दिया। बोलो, इसमें बच्चे का क्या दोष था?"

सरला बहन की बात सुनकर कमलेश ने कहा—"बहन जी, आज की आपकी बातों पर यदि हम बहनें चलें तो परिवारिक जीवन को सरल और आदर्श बना सकेंगी। परिवार के व्यक्ति यदि एक-दूसरे के हितों को अपना हित समझने लगें, एक-दूसरे की व्यर्थ की और झूठी आलोचनाओं एवं निन्दाओं को बन्द कर दें, तो निश्चय ही परिवार सुखी एवं स्वर्ग-समान हो सकता है।"

अन्त में निम्न गीत के साथ गोष्ठी का समापन हुआ—

जहाँ पतिव्रता नार रहेगी, वहीं प्रेम की धार बहेगी,
वह घर स्वर्ग-समान बने।
घर-आँगन और कपड़े सारे, बर्तन घर में साफ मिलें,
लड़के-लड़की प्रातः उठकर, करते प्रभु का जाप मिलें।
आपस में मिल रहना जानें, सभी बड़ों का कहना मानें।
शुभकामी सन्तान बने।
वह घर स्वर्ग-समान बने ।।१।।

सास-ससुर और पति-सेवा में, रहती आज्ञाकारी जो।
मीठी वाणी, ननद-जिठानी, सबको लागे प्यारी जो।
कभी किसी से लड़ती ना हो, बिना बात झगड़ती ना हो।
उसका ही सम्मान बने ।।२।।
वह घर स्वर्ग-सम्मान बने।

ऐसी नारी, पति की प्यारी, शुचि सिंगार बनाती हो।
वस्त्र स्वदेशी धारण करके, जीवन सरल बनाती हो।
करती नहीं किसी से दंगा, शीश ढका रहे, ना रहे नंगा,
यह सारी पहचान बने ।।३।।
वह घर स्वर्ग-समान बने।

देते वेद गवाही जग में, ऊँचा दर्जा नारी का।
सुख का वास वहीं होता है, नहीं काम बीमारी का ।।
'राघव' ऐसे ही घर-घर में, कस्बा, बस्ती, नगर, शहर में।
ब्रह्मचारी बलवान् बने ।।४।।
वह घर स्वर्ग-समान बने।

भूत-प्रेत और अन्धविश्वास

आज सहेलियों की वार्ता का दसवाँ दिन था। आज की बैठक मधु के यहाँ थी। सरला बहन के आने पर बड़े उत्साह के साथ आज का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद सरला बहन के साथ सबने गीत गाया—

कल्याण मेरे इस जीवन का भगवान् न जाने कब होगा?
जिससे भय-भ्रान्ति मिटा करते, वह ज्ञान न जाने कब होगा?
जिससे निज दोष दिखा करते, पापों-अपराधों से डरते,
उस सद्विवेक का मानव में, सम्मान न जाने कब होगा?
शीतलता जिससे आती है, सारी अशान्ति मिट जाती है,
वह नित्य प्राप्त है सोम-सुधा, पर पान न जाने कब होगा?
अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरुजन बहुविधि समझाते हैं।
भोगस्थल से योगस्थल में, प्रस्थान न जाने कब होगा?
वासना और चिन्ता मन में, फिर कुछ भी नहीं सताती हैं,
जिससे प्रभु तेरा दर्शन हो, वह ध्यान न जाने कब होगा?

सरला बहन ने 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय समुल्लास का उल्लेख करते हुए बालकों के सुधार की बातें बताना प्रारम्भ किया और कहा—"स्वामीजी महाराज ने लिखा है—जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो-जो विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल हैं, उनमें गिरानेवाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें जिससे प्रेत-भूतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।"

निर्मला ने पूछा—"बहन जी! भूत-प्रेत क्या होते हैं? क्या भूत-योनि भी है? ओझा, सयाने और मौलवी आदि भी भूत-प्रेत मानते हैं, झाड़ते-फूँकते हैं, क्या यह सब ठीक है?"

सरला बहन ने कहा—"भूत-प्रेत आदि कुछ नहीं होते। हाँ, प्रेत का अर्थ है मृत शरीर; जब किसी का देहान्त हो जाता है, तब मृतक शरीर को प्रेत कहते हैं, अर्थात् जो यहाँ से चला गया है, वह प्रेत कहलाता है। और जब प्रेतहार, अर्थात् मृतक को उठानेवाले उस शरीर का दाह कर देते हैं और वह व्यक्ति इतिहास की वस्तु हो जाता है, तब हम कहते हैं कि वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्तमान में आके न रहें, वे भूतस्थ होने से 'भूत' कहलाते हैं। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु, जिसको शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत,

शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःख-दायक होते हैं।"

निर्मला ने फिर पूछा—"बहन जी ! भूत-प्रेतादि का सम्बन्ध क्या शिक्षा से भी है ?"

सरला बहन ने कहा—"इनका शिक्षा से सीधा सम्बन्ध है। स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के बारे में जो मार्ग-प्रदर्शन किया है, वह आज के शिक्षा-विशेषज्ञों को ध्यान में रखना चाहिए। महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा-पद्धति से भी स्वामीजी की शिक्षा-पद्धति अधिक उच्चकोटि की है। स्वामीजी 'सत्यार्थप्रकाश' में बतलाते हैं कि बालकों को सबसे पहले सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य, सुशिक्षित और निडर हो। किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें……उस बालक को सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, माता-पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होकर सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे।……सन्तान को इस प्रकार शिक्षित करे कि किसी भूर्त के बहकावे में न आवे और जो-जो विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिरानेवाले व्यवहार हैं, उनको भी समझा दे जिससे भूत-प्रेतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।"

निर्मला ने कहा—"मेरे घर के लोभ भूत-प्रेतादि में बहुत विश्वास करते हैं। अतः इस विषय को और भी स्पष्ट कर दीजिए ताकि मैं उनको समझाने का प्रयत्न करूँ।"

निर्मला अभी आयु में बहुत छोटी थी, अतः उसको समझाते हुए सरला बहन ने कहा—"देखो बेटी ! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। अज्ञानी लोभ पदार्थ-विद्या या वैद्यक शास्त्र के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादिक मानसिक रोगों का नाम भूत-प्रेतादि धरते हैं। उनका औषध-सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी लोगों पर विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा-धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बाँधते-बँधवाते फिरते हैं; अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं। जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज, इस लड़का-लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?' तब वे बोलते हैं कि 'इसके शरीर में बड़ा भूत-प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई हैं। जबतक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा या इतनी भेंट दो तो हम मन्त्र, जप, पुरश्चरण से झाड़के इनको निकाल दें।' तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाए, परन्तु आप इसको अच्छा कर दीजिए।' तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं—'अच्छा, लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा देवता को भेंट और महादान कराओ।' झाँझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते, गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच-कूद के कहता है—'मैं इसका प्राण ले लूँगा।' तब वे अन्धे उस धूर्त के पगों में पड़के कहते हैं—'आप चाहे सो लीजिए, इसको बचाइए।' तब वह धूर्त बोलता है—'मैं हनुमान हूँ, लाओ पक्की मिठाई,

तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट।' 'मैं देवी या भैरव हूँ, लाओ पाँच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र।' अब वे कहते हैं कि 'जो चाहे सो लो।' तब तो वह धूर्त बहुत नाचने-कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पाँच जूता, दंडा व चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि यह उनका हरणार्थ ढोंग है।"

निर्मला अभी कुछ ग्रहों के विषय में पूछना चाहती थी कि भारती ने उसे रोककर बहन जी को लक्ष्य करके बतलाया—"मेरे पिताजी, मुझे अपने गाँव के पास के एक गाँव नदौली ले गए। नदौली ब्राह्मणों का गाँव है। वहाँ से थोड़ी दूर पर रामचन्द्र पण्डित की कुटिया थी। उनकी कुटिया के पास सोम और शुक्रवार को हजारों स्त्रियाँ जुटती थीं। मेरे पिताजी अपने दो-तीन मित्रों के साथ जब वहाँ पहुँचे तो एक बहुत बड़े भूखंड पर हजारों स्त्रियाँ अपना झोंटा खोलकर सिर हिला रही थीं, कुछ बोल रही थीं। रामचन्द्र पण्डित पिताजी की जान-पहचान के थे। वे उनसे मिले और बतलाया कि इन सब को कुछ है नहीं, भूत-प्रेतादि कुछ होता नहीं है। परन्तु, ये सब औरतें बदमाश हैं, अपने पति, सास-ससुर, ननद और घरवालों से लड़कर जान-बूझकर यह उपद्रव करती हैं। अभी मैं इनका भूत भगाता हूँ। उनके पास बेंत थी। उन्होंने एक बनावटी मन्त्र पढ़ने का अभिनय किया और बड़ी बुरी गालियाँ देते हुए आगे बढ़े और सच मानिए बहन जी, जब उनके बीच पहुँचे तो जोर-जोर से चिल्लानेवालियों की पीठ पर सटासट बेंत मारी। फलस्वरूप, वे सब सन्न हो गईं और उनके भूत भी भाग गए।"

सारी सखियाँ खिलखिलाकर हँस दीं।

निर्मला ने पूछा—"बहन जी! ग्रह क्या होते हैं?"

सरला बहन ने बताया—"सूर्य तारा है, और तारे से जो अलग हुए हैं वे ग्रह हैं, जैसे मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, पृथिवी, यूरेनस, नेप्चून और अवान्तर ग्रह, ये नौ ग्रह हैं।"

"तो क्या बहन जी, ये ग्रह किसी को ग्रसते भी हैं?"

सरला बहन ने कहा—"ग्रह आदि से कुछ बनता-बिगड़ता तो नहीं है, परन्तु अस्वस्थ व्यक्ति जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं— 'हे महाराज! इसको क्या है?' तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनका शान्तिपाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाएगा, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो आश्चर्य न होगा।'

सरला बहन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"ग्रह आदि के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि भी लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ नहीं कर सकते। क्या वे चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख, और शान्त होके सुख दे सकते हैं? नहीं, वे चेतन नहीं।"

निर्मला ने पूछा—"क्या जो यह संसार में राजा-प्रजा सुखी-दुःखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है?"

सरला बहन ने कहा—"निर्मला बेटी, इस विषय को समझने के लिए सत्यार्थ-

प्रकाश का द्वितीय समुल्लास पढ़ो। ऐसे अन्धविश्वास स्त्रियों में अधिक पाए जाते हैं, अतः सत्यार्थप्रकाश विशेष रूप से पढ़ना चाहिए। दुःख-सुख सब पाप-पुण्य के फल हैं।"

निर्मला ने पूछा—"तो क्या ज्योतिश्शास्त्र झूठा है ?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं, उसमें जो अंकबीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।"

निर्मला ने फिर पूछा—"क्या जो ग्रहों के आधार पर जन्मपत्र है, सो निष्फल है ?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम शोकपत्र रखना चाहिए। क्योंकि, जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है, परन्तु वह आनन्द तबतक होता है कि जबतक ग्रहों का फल जन्मपत्र के आधार पर न सुनें। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं—'महाराज, आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइए।' जो धनाढ्य हो तो बहुत-सी लाल-पीली रेखाओं से चित्र-विचित्र, और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाने को कहता है। वह सुनाने आता है। तब उसके माँ-बाप ज्योतिषी जी के सामने पैठके कहते हैं—'इसका जन्मपत्र अच्छा तो है ?' ज्योतिषी कहता है—'जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह और मित्र ग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं—'वाह-वाह ! ज्योतिषी जी महाराज, आप बहुत अच्छे हैं।' ज्योतिषी जी जब समझते हैं कि इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता, तब वह बोलता है कि 'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, ये ग्रह क्रूर हैं, अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है।' इसको सुनके माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़के शोकसागर में डूबकर ज्योतिषी से कहते हैं कि—'महाराज जी। अब हम क्या करें ?' तब ज्योतिषी जी कहते हैं—'उपाय करो !' गृहस्थ पूछे—'क्या उपाय करें ?' ज्योतिषी जी महाराज प्रस्ताव करने लगते हैं कि 'ऐसे-ऐसे दान करो। ग्रह के मन्त्र का जाप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जाएँगे।' निर्मला, जानती हो 'अनुमान' शब्द इसलिए कह देते हैं कि तो मर जाएगा तो हम क्या करें ? परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है; हमने तो बहुत-सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे।' और जो बच जाय तो कहते हैं कि 'देखो, हमारे मन्त्र-देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ? तुम्हारे लड़के को बचा दिया'।"

भारती बोली—"सचमुच, बहन जी, ये सब बड़े धूर्त होते हैं। मेरे पिता जी ने अपने गाँव से कुछ दूर एक 'कोंहड़ा' नामक गाँव की बात सुनाई। वहाँ एक झाड़-फूंक करनेवाले, चोरी की चीज बतानेवाले, लड़का पैदा हो जाय तो आशीर्वाद देनेवाले एक महाशय रहते थे। उन्होंने जब कुछ रुपया कमा लिया तो कुछ अपने एजेण्ट रख लिये। वे 'लार रोड' स्टेशन पर आनेवाली गाड़ियों, बसों आदि पर पहुँच जाते और साइकिल से सबका कार्य जान लेते, फिर सोखा के पास पहुँचकर उसे बता देते कि उस लाल साड़ी-वाली के गहने गायब हो गए हैं, पीले कुर्तेवाले की पत्नी के बच्चा नहीं होता, बक्सेवाले

व्यक्ति को अमुक रोग है। अब जब वे उनके पास पहुँचते तो सोखा जी पहले ही कह देते—तुम्हारे आभूषण गायब हो गए हैं, तुम्हारे लड़का नहीं होता, तुम्हें क्या रोग है, और वे प्रभावित होकर, अपना धन फूंककर उनकी सेवा करते। उनकी कार्यसिद्धि हो न हो, उनका उल्लू तो सीधा हुआ !"

निर्मला ने फिर पूछा—"शीतला, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि क्या हैं ?"

सरला बहन ने कहा—"ये भी कुछ नहीं हैं। जो इनको हटाने का दावा करे तो उससे कहना चाहिए कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ानेवाले उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिए। मिथ्या बातों से बचने का उपदेश बचपन में ही सन्तानों के हृदयों में डाल दें जिससे कि स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावें। बालकों में यह आदत डालनी चाहिए कि सदा सत्यभाषण, और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए। किसी को अभिमान नहीं करना चाहिए। छल, कपट या कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिए ! इस प्रकार भूत, प्रेतादि अन्धविश्वासों से बचपन से ही माता-पिता का कर्तव्य है कि बच्चों को बचावें।"

प्राचीन शिक्षा-पद्धति

सरला बहन की इस गोष्ठी का आज ग्यारहवाँ दिन था। इस गोष्ठी की चर्चा देवनगर के घर-घर में पहुँच चुकी थी। मधु के घर हुई दसवीं गोष्ठी में सुधा जी के विशेष आग्रह पर उसके यहाँ ही गोष्ठी का कार्यक्रम रखा गया। आज सबसे पहले भारती ने प्रभु-भक्ति का गीत गाया—

दया कर हे दयामय देव, आओ,
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ।
कहाँ मैं नाथ दोनों हाथ खाली,
कहाँ तुम हो सकल संपत्तिशाली।
न आडम्बर बड़े मैं कर सकूंगा,
न भारी भेंट लाकर धर सकूंगा।
मुझे इसकी न कुछ परवाह ही है,
तुम्हें भगवन् न इसकी चाह ही है।
हृदय अपना बना आसन बिछाऊँ,
तुम्हें तब प्रेम से उस पर बिठाऊँ।
निरन्तर भक्ति के आँसू बहाऊँ,
तुम्हारे पाद-पद्मों को धुलाऊँ।

बना श्रद्धा-सुमन का हार लाऊँ,
तुम्हारे कंठ में सादर पिन्हाऊँ।
कृपा कर हे कृपा के सिन्धु आओ,
सफल मेरे मनोरथ कर दिखाओ।

गीत की समाप्ति पर सरला जी ने पास रखे 'सत्यार्थप्रकाश' को उठाया और उसका एक पृष्ठ खोलकर कहा—"ऋषि ने लिखा है 'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद'—यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।"

मधु ने पूछा—"यह मातृमान्, पितृमान् और आचार्यवान् का क्या मतलब है ?"

सरला बहन ने कहा—"वस्तुत: जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है, वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् है, जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए मातृमान् अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता यस्य, स मातृमान्' प्रशस्त और धार्मिक जिसकी माता है वह मातृमान् होता है, अर्थात् गर्भाधान से लेकर जबतक पूरी विद्या और शिक्षा न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे।" सत्यार्थप्रकाश के इस सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए सरला बहन ने उपनयन संस्कार की चर्चा की और बालक-बालिकाओं की शिक्षा का उत्तरदायित्व ाता, पिता और आचार्य पर डालते हुए उन्हें किस प्रकार शिक्षा दे, यह बतलाया।

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहन जी, शिक्षा किसे कहते हैं और उसका क्या उद्देश्य है ?"

सरला बहन ने कहा—"जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते हैं।"

भारती ने पूछा—"बहन जी, शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?

सरला बहन ने बताया—"इस विषय को इस प्रकार समझो कि शिक्षा एक साधन है जिससे मानव-जीवन के उद्देश्यरूपी साध्य को प्राप्त किया जा सकता है। मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है, बता सकती हो, सुधा ?"

सुधा को चुप देखकर भारती ने कहा—"मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आनन्द की चरम सीमा मुक्ति में है। मुक्ति का मतलब है जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना; इसी को पुरुषार्थ, मोक्ष आदि शब्दों से पुकारा जाता है।"

सरला बहन ने कहा—"भारती ! तुमने जीवन का उद्देश्य ठीक बतलाया है। अब जरा मधु बताए कि जब शिक्षा का उद्देश्य मानव-जीवन के उद्देश्य पर निर्भर है और मानव-जीवन का उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना है तो शिक्षा का उद्देश्य क्या हुआ ?"

मधु ने कहा—"शिक्षा का उद्देश्य मानव-जीवन के उद्देश्य मोक्ष, मुक्ति, पुरुषार्थ या आनन्द-प्राप्ति के योग्य बनाना है, और यह आत्म-साक्षात्कार से हो सकता है। आत्मा के ऊपर जो अज्ञान या अविद्या का आवरण आया हुआ है, उसे हटाना शिक्षा का उद्देश्य है। अन्यथा, हम आत्मा के वास्तविक आनन्दमय रूप को भूल जायेंगे।"

सुधा ने पूछा—"आत्मा के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कैसे हो सकता है?"

इसका उत्तर जब उनकी बातचीत से नहीं निकला तो सरला बहन ने कहा—"योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार हो सकता है।"

"तो क्या विद्यालयों में योग की शिक्षा देनी होगी?" मधु बोली।

सरला बहन ने कहा—"योग की शिक्षा देना तो सम्भव नहीं, परन्तु उसके लिए वातावरण अवश्य बनाना होगा। योग के वातावरण का निर्माण चरित्र-निर्माण के द्वारा सम्भव होगा। 'चरित्र-निर्माण' संकुचित अर्थ में नहीं। चरित्र में कार्य के प्रति रुचि का भी सवाल है। कार्य के प्रति छात्र की रुचि तभी होगी, जब उसका कोई लक्ष्य होगा। अपने सामने लक्ष्य रखने और उसे पूरा करने के लिए योगदर्शन के समाधिपाद, ३३वें सूत्र में बतलाया गया है—

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' अर्थात् सुखी पुरुषों को देखकर हर्षित होना मैत्री, दुःखी मनुष्यों को देखकर दुःखी होना करुणा, किसी को अच्छा काम करते देख उसे उत्साहित करना मुदिता होना और पाप से घृणा करना तथा पापियों से घृणा न करना उपेक्षा कहलाता है। इनसे मन निर्मल होता है, एकात्मकता या ध्यान की सृष्टि होती है। एकाग्रता से चरित्र-निर्माण होता है, योग का वातावरण बनता है, आत्म-साक्षात्कार की ओर बढ़ते हैं तथा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इनके अतिरिक्त शिक्षा जब हमें कला की ओर झुकाती है और सत्य की ओर प्रवृत्त करती है, तभी हमें आनन्द या मोक्ष प्राप्त हो सकता है।"

शिक्षा का उद्देश्य समझने के बाद मधु ने विद्या का फल पूछा।

सरला बहन ने कहा—"विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्मिक होना अवश्य है। जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर न किया और बुरा जानकर न छोड़ा, तो क्या वह चोर के समान नहीं है? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरा जानते हुए भी करता, और साहूकारी को अच्छा जानकर नहीं करता, वैसा ही जो पढ़के भी अधर्म को नहीं छोड़ता, धर्म को नहीं करनेवाला मनुष्य है।"

मधु ने पूछा—"बच्चों की शिक्षा का आरंभ किस प्रकार हो?"

सरला बहन ने कहा—"वर्णोच्चारण की शिक्षा का आरंभ घर में होना चाहिए। जब पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों, तब माता-पिता उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें; अन्य देशीय भाषाओं का भी अभ्यास करावें। जन्म से ५वें वर्ष तक माता, छठे से आठ वर्ष तक पिता शिक्षा करे, और ९वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य-कुल में, अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करनेवाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त होना चाहिए। ग्राम या नगर भी पाठशालाओं से दूर रहें तो अच्छा है। विद्यार्थियों के भोजन-छादन का प्रबन्ध विद्यालय की ओर से होना चाहिए। सबको तुल्य वस्त्र, तुल्य खान-पान और तुल्य आसन देने चाहिएँ। चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे निर्धन की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।"

मधु ने फिर पूछा—"क्या लड़के और लड़कियों के संयुक्त विद्यालय होने

चाहिएँ ?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं। जब वे आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की, और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देना चाहिए !"

"क्या यज्ञोपवीत संस्कार केवल लड़कों का ही होना चाहिए ?" सुधा ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—"नहीं, केवल लड़कों का नहीं। दोनों का संस्कार होना चाहिए। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत संस्कार और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके आचार्य-कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज देवे।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहन जी, क्या सह-शिक्षा नहीं होनी चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए पृथक्-पृथक् आर्य विद्यालय होने चाहिएँ। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का भी न जाने पावे, अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी रहें, तबतक स्त्री या पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त-सेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और सम्भाषण, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहनजी, पढ़ानेवाले अध्यापक और आचार्य कैसे हों, इसका भी स्पष्टीकरण कीजिए।"

सरला बहन ने कहा—"जो अध्यापक स्त्री या पुरुष भ्रष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें; किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त और धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहन जी ! आचार्य-कुल के लिए 'आचार्य' किस प्रकार का होना चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द-अर्थ-सम्बन्ध और क्रिया का जाननेवाला, छल-कपटरहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेशक, सबका हितैषी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होवे। आचार्य उसको कहते हैं जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे। आचार्य उसको कहते हैं कि जो असत्याचार को छुड़ाके सत्याचार का और अनर्थों को छुड़ाके अर्थों का ग्रहण कराके ज्ञान को बढ़ा देता है। जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा-पूर्वक विद्या होने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न करे, उसको आचार्य कहते हैं। जो सांगोपांग वेद-विद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह 'आचार्य' कहाता है।"

सुधा ने कहा— "बहनजी, क्या शिक्षा अनिवार्य रूप से बालक-बालिकाओं को देनी चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"ऐसा राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें या आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के या लड़कियों को घर में न रख सके।

पाठशाला में अवश्य भेज देवें; जो न भेजें वे दण्डनीय हों। राजा को चाहिए कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान् कराना; जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता-पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का और लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य-कुल में रहें; जबतक समावर्तन का समय न आवे तबतक विवाह न होना चाहिए।"

मधु ने पूछा—"ऋषिकृत ग्रन्थ कौन-कौन-से हैं? क्यों उन्हें ही पढ़ना चाहिए?"

सरला बहन ने कहा—"ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे (ऋषि) बड़े विद्वान्, सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे, और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं, अर्धज्ञानी हैं, उनके बनाए ग्रन्थ ठीक नहीं हैं। विज्ञान आदि विषय भी जिन्होंने बनाये हैं वे भी ऋषियों की श्रेणी में आते हैं, अतः गणित, विज्ञान आदि भी पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार मनुष्य को विद्या प्राप्त करनी चाहिए। विद्वान् उसको कहते हैं जो कि अर्थ-सहित विद्या को पढ़कर वैसा ही आचरण करे कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और परमेश्वर की प्राप्ति यथावत् हो सके। ऐसा जो विद्वान् है, वह संसार को सुख देनेवाला होता है, उसको कोई भी मनुष्य दुःख नहीं दे सकता, क्योंकि जिसके हृदय में विद्यारूपी सूर्य प्रकाशित हो रहा है उसको दुःखरूपी चोर कभी दुःख नहीं दे सकता।"

वैदिक शिक्षा की ये बातें सुनने के बाद माण्टेसरी स्कूल में अपने बच्चों को भेजनेवाली द्रौपदी सिन्हा ने कहा—"क्यों न हम बच्चों को शिक्षित और सभ्य बनाने के लिए माण्टेसरी स्कूल में भेजें? हम महिलाएँ घरों में अपने बच्चों की शिक्षा का भार क्यों लें? उन विद्यालयों में बच्चे की शारीरिक, मानसिक उन्नति का ध्यान रक्खा जाता है। उनकी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की उन्नति के लिए प्रयत्न किया जाता है। इस पद्धति के दो उद्देश्य हैं— एक तो प्रत्येक इन्द्रिय को ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराने का अभ्यास हो जाता है; हमारे ज्ञान में अपूर्णता इसलिए रहती है क्योंकि हम इन्द्रियों से अधकचरा ज्ञान प्राप्त करने के आदी हैं; इन्द्रियों को साधने से दूसरा लाभ यह होता है कि मनुष्य की सम्पूर्ण बुद्धि का विकास होता है। एक इन्द्रिय की सधी हुई शक्ति (Faculty) सब इन्द्रियों और बुद्धि को भी शक्तिदान करती है। यह एक तरह का व्यायाम है। अतः बच्चों को माता-पिता शिक्षा दें, इससे यह अच्छा न होगा कि हम ट्रेण्ड सिस्टर्स के हाथों में बच्चों को सौंप दें?"

सरला बहन ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"माण्टेसरी-पद्धति की जो बात आपने कही, उसके 'शिक्षोपकरण' (Didactic Apparatus) इतने महँगे हैं कि इन्हें हर स्कूल नहीं रख सकता और इससे सर्वसाधारण जनता को लाभ नहीं पहुँच सकता। इसके अतिरिक्त माण्टेसरी-पद्धति में 'बौद्धिक व्यायाम' का विचार भी ठीक नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि माता के हृदय में अपने बच्चे के निर्माण और वात्सल्य-प्रेम की जो भावना होगी, क्या वह सिस्टर्स के हृदय में होगी?"

द्रौपदी सिन्हा इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी।

सरला बहन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"आज जो हममें सहृदयता, राष्ट्रीयता, अनुशासन आदि नहीं रहा है, जो हमारे चरित्र गिर रहें हैं, उसका भी कारण हमारी विदेशी शिक्षा है। आज बच्चा उत्पन्न होने पर माँ का दूध न पीकर विदेशी बोतल का दूध पीता है। दो वर्ष का होने के बाद माँ से शिक्षा न लेकर, अपनी मातृभाषा को तुच्छ समझकर विदेशी भाषा में विदेशी परम्पराएँ और बातें सीखता है। 'माताजी-पिताजी' जैसे सार्थक, भावपूर्ण और पवित्र शब्दों को छोड़कर मम्मी, पापा और डैडी आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग करता है। विदेशी भेष, विदेशी भाव एवं विदेशी रुचि अपनाता है, बड़ा होने पर विदेशी गेहूँ-चावल खाता है। परिणामतः उसमें 'स्व' का नाश हो जाता है। अब तक का 'स्व' का बन्धन टूट जाता है और उस 'स्व' के अभाव में आत्म-नियन्त्रण हट जाता है। आत्म-नियन्त्रण के अभाव में वह विदेशी रूप में 'इंडीपैण्डैंट' तो बन जाता है, किन्तु स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं बन पाता।"

मधु ने पूछा— "बहन जी, इंडीपैण्डैंट और स्वाधीन या स्वतन्त्र में क्या अन्तर है ?"

सरला बहन ने कहा— "'इंडीपैण्डैंट' का अर्थ 'अनधीन' है, स्वाधीन नहीं। अनधीन व्यक्ति किसी के अधीन नहीं। वह उच्छृंखल बन जाता है। वह बिना टिकट के यात्रा करता है, दूसरे के घर के सामने चुपके से कूड़ा फेंक देता है, दुकान से दुकानदार की कोई चीज चुपके से साफ कर देता है। दूसरी ओर स्वाधीन व्यक्ति दूसरे के अधीन न होकर अपने अधीन रहता है और यह अधीनता आगे बढ़ने में सहयोग देती है। उसका चरित्र उज्ज्वल और अनुकरणीय बनता है। यह चरित्र-निर्माण भारतीय शिक्षा का उद्देश्य है। यह उद्देश्य 'सिस्टर्स' पूरा नहीं कर सकतीं; माता पूरा कर सकती है, पिता सिखा सकता है और आदर्श अध्यापक सहयोग कर सकता है। चरित्र, शिष्टाचार और सभ्यता के लिए बालक को आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या-द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार ग्रहण करने की शिक्षा देनी चाहिए। क्रोधादि छोड़कर मधुर वचन बोलने, बकवास न करने की शिक्षा देनी चाहिए। बालक उतना ही बोले जितना उसे बोलना चाहिए। बड़ों का आदर करना चाहिए, उन्हें ऊँचा स्थान दे। उन्हें 'नमस्ते' करे। सभा में योग्य आसन पर बैठे। आचार्य, माता, पिता और गुरुजनों का सम्मान करे और उनकी बातों को माने। अध्यापक का काम भी प्रारम्भ में माता-पिता को ही करना होता है।"

यह सुनकर श्रीमती द्रौपदी सिन्हा की भी आँखें खुल गईं और उसने भी अपने बच्चों को विदेशी शिक्षा से निकालकर, भारतीय संस्कृति में ढालने का संकल्प ले लिया।

□ □ □